# HINDI AALOCHNA AUR NAZEER AKBARABADI

A DISSERTATION SUBMITTED DURING 2019 TO THE UNIVERSITY OF HYDERABAD IN PARTIAL FULFILMENT OF THE AWARD OF **A MASTER OF PHILOSOPHY** IN DEPARTMENT OF HINDI, SCHOOL OF HUMANITIES

BY

**KUMUD RANJAN MISHRA**

(17HHHL01)

2019

UNDER THE SUPERVISION OF

**PROF. GAJENDRA KUMAR PATHAK**

**DEPARTMENT OF HINDI**

SCHOOL OF HUMANITIES

UNIVERSITY OF HYDERABAD

HYDERABAD, 500 046

INDIA

# हिंदी आलोचना और नज़ीर अकबराबादी

(हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में **एम. फिल. की उपाधि** हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)


**शोधार्थी**

**कुमुद रंजन मिश्र**

(17HHHL01)


**2019**


**निर्देशक**

**प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक**

हिंदी विभाग

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद, 500 046

भारत

# DECLARATION

I, **KUMUD RANJAN MISHRA,** hereby declare that the dissertation **HINDI AALOCHNA AUR NAZEER AKBARABADI [ हिंदी आलोचना और नज़ीर अकबराबादी ]** submitted by me under the guidance and supervision of **PROF. GAJENDRA KUMAR PATHAK** is a bona-fide research work which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date: Name: KUMUD RANJAN MISHRA

Place: Reg. No. : 17HHHL01

______________________

Signature of the Student

# CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled **HINDI AALOCHNA AUR NAZEER AKBARABADI [ हिंदी आलोचना और नज़ीर अकबराबादी ]** submitted by **KUMUD RANJAN MISHRA** bearing Reg. No. **17HHHL01** in partial fulfilment of the requirements for the award of **MASTER OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a bona-fide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free dissertation.

The dissertation has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor
(Prof. Gajendra Kumar Pathak)

Head of the Department
(Prof. Sachidananda Chaturvedi)

Dean of the School
(Prof. Sarat Jyotsna Rani)

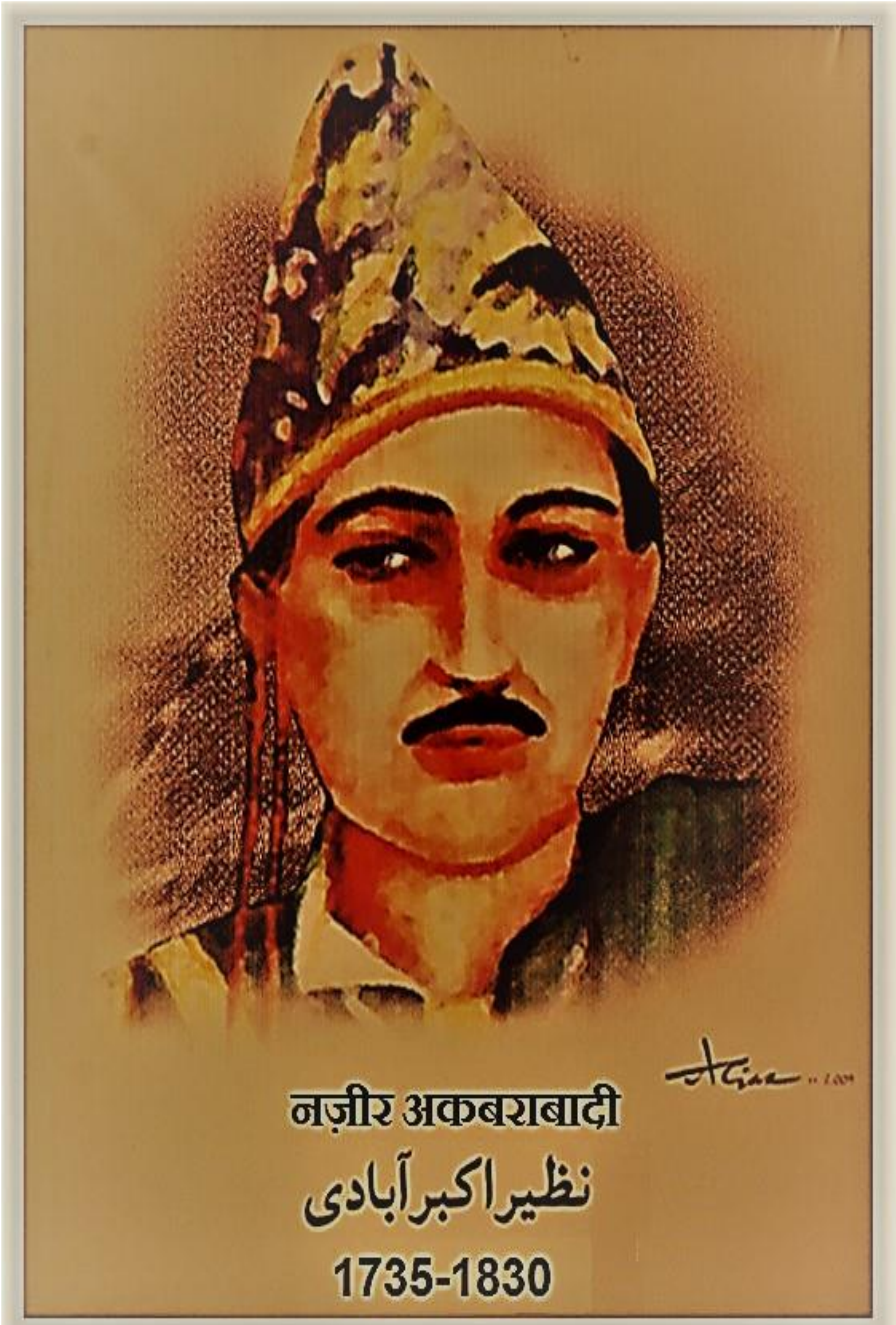
नज़ीर अकबराबादी
نظیر اکبرآبادی
1735-1830

# अनुक्रमणिका


| | | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| **प्रस्तावना** | | | i - vi |
| **प्रथम अध्याय :** | **हिंदी साहित्य में नज़ीर अकबराबादी** | | 01-24 |
| | 1.1 | हिंदी साहित्य के इतिहास में नज़ीर अकबराबादी | |
| | 1.2 | हिंदी आलोचना में नज़ीर अकबराबादी | |
| **द्वितीय अध्याय :** | **उर्दू साहित्य में नज़ीर अकबराबादी** | | 25-46 |
| | 2.1 | उर्दू साहित्य के इतिहास में नज़ीर अकबराबादी | |
| | 2.2 | उर्दू आलोचना में नज़ीर अकबराबादी | |
| **तृतीय अध्याय :** | **नज़ीर के काव्य के विविध पक्ष** | | 47-83 |
| | 3.1 | धर्म/मज़हब और नज़ीर की कविता | |
| | 3.2 | नज़ीर का सांस्कृतिक-बोध | |
| | 3.3 | नज़ीर की कविता में दार्शनिक तत्व | |
| | 3.4 | नज़ीर की कविता में आधुनिक चेतना | |
| | 3.5 | नज़ीर की रचनाधर्मिता और सौन्दर्यबोध | |
| **चतुर्थ अध्याय :** | **नज़ीर की काव्य-भाषा** | | 84-101 |
| **उपसंहार** | | | 102-107 |
| **सन्दर्भ सूची** | | | 108-111 |
| **प्रकाशित शोध-आलेख एवं प्रमाण-पत्र** | | | 112-120 |

# प्रस्तावना

# प्रस्तावना

नज़ीर हिन्दुस्तानी के उन कुछ अवामी शायरों में से एक हैं, जिनकी रचनाओं में सामान्य जन-जीवन अपनी सादगी, सहजता, स्वाभाविकता और सम्पूर्णता के साथ स्वर पाता है। नज़ीर अकबराबादी का रचनाकाल वही समय है जिसे हम हिंदी साहित्य में रीतिकाल के नाम से जानते हैं। इनका वास्तविक नाम वली मुहम्मद है। अन्य मध्यकालीन कवियों की तरह 'नज़ीर' ने भी अपने जीवन की कोई सूचनात्मक जानकारी नहीं दी है। सन् 1900 के आस-पास प्रो. अब्दुल गफूर शहबाज़ ने नज़ीर की नातिन की मदद से नज़ीर के जीवन संबंधी जो जानकारियाँ एकत्र की, वे ही आज नज़ीर के संबंध में प्रामाणिक तथ्य के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। इसके अनुसार नज़ीर के पिता का नाम मुहम्मद फ़ारूक़ था। जो पटना के किसी रईस के यहाँ काम करते थे। उनका खानदानी पेशा सिपहगीरी था। नज़ीर की माँ के नाम का ज़िक्र कहीं नहीं मिलता। माँ के बारे में बस इतना लिखा मिलता है कि वह आगरा के किलेदार नवाब सुल्तान खां की बेटी थी। अपने माता-पिता की बारह संतानों में केवल नज़ीर ही बच पाए थे। नज़ीर की जन्म-तिथि और जन्म स्थान को लेकर विद्वानों में मतभेद है। प्रायः विद्वान नज़ीर का जन्म-काल 1735 ई. स्वीकार करते हैं। जन्म स्थान को लेकर दिल्ली और आगरा के बीच बहस है। कुछ विद्वान आगरा के प्रति नज़ीर का प्रेम देखकर आगरा को ही उनकी जन्मस्थली मानते हैं किन्तु प्रायः दिल्ली को ही नज़ीर का जन्मस्थान माना जाता है। नादिर शाह और बाद में अहमद शाह अब्दाली के दिल्ली पर लगातार आक्रमण के कारण नज़ीर अपनी माँ और नानी के साथ आगरा चले आये, यहीं उन्होंने मुहम्मद रहमान खां की बेटी तहव्वरून्निसा बेग़म से ब्याह किया और फिर पूरा जीवन यहीं बिताया। जीवन-यापन के लिए नज़ीर ने अध्यापन का पेशा चुना। आरम्भ में बच्चों को पढ़ाने के लिए मथुरा जाना पड़ता था किन्तु नज़ीर को आगरा से इतना प्रेम था कि आगरा छोड़कर नज़ीर का मन कहीं न लगता था अतः वह नौकरी छोड़ दी। कुछ दिन भाऊ किलेदार के उस्ताद रहे बाद में नवाब मुहम्मद अली खां के बच्चों को पढ़ाया किन्तु यहाँ टिके नहीं इसके बाद आगरा के

माईथान मोहल्ले में राजा विलासराय के बच्चों को पढ़ाया। नज़ीर ने एक लम्बी आयु पायी थी। वृद्धावस्था में फालिस के शिकार होकर लगभग 1830 ई. (प्रो. शहबाज़ के अनुसार) में आगरे में ही देह त्याग किया था। नज़ीर के शिष्यों की एक समृद्ध सूची रही है, उसमें कहीं-कहीं विवाद सहित मिर्ज़ा ग़ालिब का भी नाम आता है। सच चाहे जो रहा हो नज़ीर निस्संदेह अपने समय के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि रहे हैं।

कहा जाता है कि भाषाएँ तमाम सत्ताओं को नज़रंदाज़ करती हुई अपनी रौ में अपने नए रूपाकार ग्रहण करती चली जाती हैं। पर भाषाओं के नए रूपाकार के बनने में उसे बरतने वाले समाज, समाज में रहने वाले व्यक्ति और व्यक्तियों में भी साहित्यकारों की बड़ी भूमिका होती है। आज की हिंदी जिस रूप और संरचना को प्राप्त कर सकी है उसे गढ़ने में कुछ उन रचनाकारों-कवियों का भी अविस्मरणीय योगदान रहा है जिन्हें सांप्रदायिक नकारात्मक शक्तियों ने परिदृश्य से बाहर रखने की साजिश की। नज़ीर इस साजिश के सबसे बड़े शिकार हैं। एक शोधार्थी के रूप में मेरी ये जिज्ञासा और कोशिश है कि नज़ीर के सम्बन्ध में इतिहास का पुनर्लेखन न भी किया जाए, तब भी नज़ीर के इतिहास को इतना भी धूमिल न किया जाए कि नज़ीर की पहचान ही खतरे में पड़ जाए।

नज़ीर अकबराबादी हिंदी साहित्य के 18 वीं शताब्दी के प्रमुख कवि हैं। जिन्होंने अपने समय से आगे के युग को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया। प्रस्तुत शोध के अंतर्गत हिंदी आलोचना में नज़ीर पर हुई चर्चाओं का मूल्यांकन किया जाएगा तथा उन कारणों को खोजने का प्रयास किया जाएगा जिसने अब तक इन्हें हिंदी के आलोचना संसार से दूर रखा। वास्तव में आज के समय में नज़ीर को समझने की जरूरत सबसे अधिक है क्योंकि आधुनिक युग जिसे हम भूमंडलीकरण का युग मानते हैं, आज भी व्यक्ति अपनी जातीय और धार्मिक मान्यताओं से ऊपर नहीं उठ पाया और नज़ीर ऐसे समय में तमाम बन्धनों से ऊपर उठकर साहित्य में जीवन को अभिव्यक्त कर रहे थे जब धार्मिक और सामाजिक कट्टरता आज से कहीं अधिक थी।

वस्तुतः इतिहास और आलोचना के सम्बन्ध पर विचार करते हुए सबसे पहले यह समझ लेना समीचीन होगा कि व्यक्ति निरपेक्ष इतिहास का कोई अस्तित्व नहीं है। आलोचक घटनाओं और तथ्यों को अपने आलोचकीय मानक पर कसता है तत्पश्चात उसका आलोचकीय विवेक क्षुद्रताओं, महानताओं और 'सामान्यों' का निर्णय करता है। आलोचना और इतिहास का यही सम्बन्ध है कि आलोचना तथ्यों और घटनाओं के मूल्यों का निर्धारण करती है और इसी निर्धारण के क्रम को समय के अनुरूप तार्किक ढंग से सज़ा देने से इतिहास का निर्माण होता है। हिंदी और उर्दू की आलोचना परंपरा में नज़ीर का सही-सही मूल्य निर्धारण अब तक नहीं हो सका है इसीलिए मैं इन दोनों भाषाओं के साहित्यिक इतिहास को भी अपूर्ण मानता हूँ और उनमें संवर्धन की गुंजाइश देखता हूँ।

नज़ीर अकबराबादी पर हिंदी में अब तक हुए शोध-कार्यों की खोज में मुझे जो प्रमुख नाम मिले हैं उनमें पहला नाम प्रो. अब्दुल अलीम का है, जिनके शोध प्रबंध का शीर्षक है- 'नज़ीर अकबराबादी के काव्यों का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन'। दूसरा नाम डॉ. इरशाद खां का है जिनके शोध प्रबंध का शीर्षक है- 'आधुनिक हिंदी के विकास में नज़ीर की काव्य भाषा का योगदान' तीसरा नाम डॉ. दामोदर प्रसाद वशिष्ठ का है जिनका शोध विषय 'कविवर नज़ीर अकबराबादी के हिंदी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन' चौथा नाम डॉ. शमशाद अली का है इनका शोध विषय 'नज़ीर अकबराबादी के काव्य में यथार्थबोध' है। पाँचवां नाम डॉ. ज्योत्स्ना रघुवंशी का है जिनका शोध शीर्षक 'नज़ीर अकबराबादी की काव्य-भाषा' है। इस लघु शोध-प्रबंध में तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक शोध प्रविधि का आधार लिया गया है। हिंदी आलोचना में नज़ीर को समझने के क्रम में मैं उर्दू आलोचना के पास भी गया और हिंदी-उर्दू आलोचना और साहित्येतिहास में तुलनात्मक रूप से नज़ीर को समझने की कोशिश की है। तीसरे अध्याय में नज़ीर की कविताओं पर आलोचनात्मक ढंग से विचार किया है।

प्रस्तुत लघु-शोध प्रबंध **'हिंदी आलोचना और नज़ीर अकबराबादी'** को मैंने चार अध्यायों में विभाजित किया है। पहला अध्याय 'हिंदी साहित्य में नज़ीर अकबराबादी' है। इस अध्याय के अंतर्गत

मैंने हिंदी साहित्य के इतिहास और आलोचना में नज़ीर की उपस्थिति के सर्वेक्षण के साथ-साथ हिंदी साहित्य के इतिहास और आलोचना में नज़ीर की उपेक्षा को समझने का प्रयास किया है।

द्वितीय अध्याय 'उर्दू साहित्य में नज़ीर अकबराबादी' है। इसके अंतर्गत मैंने उर्दू तज़किरों, तारीखों और तनकीद में नज़ीर के मूल्यांकन को समझने का प्रयास किया है चूंकि हिंदी आलोचना में नज़ीर की अनुपस्थिति को तब तक नहीं समझा जा सकता है जब तक उर्दू आलोचना और इतिहास में इनकी उपस्थिति पर बात न हो। इसी क्रम में मैंने इस अध्याय की आवश्यकता का अनुभव किया।

तृतीय अध्याय 'नज़ीर के काव्य के विविध पक्ष' है। इसके अंतर्गत नज़ीर की कविता के वैविध्य को समझने की कोशिश की गयी है। इस अध्याय के पीछे उद्देश्य यह रहा कि जब हिंदी आलोचना और इतिहास नज़ीर को समझने में असफल रहे, तो शोध की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वह उन्हें उचित रूप में समझे।

चतुर्थ अध्याय 'नज़ीर की काव्य-भाषा' में नज़ीर की काव्य-भाषा पर विचार किया है। इस अध्याय में मैंने नज़ीर की कविताओं में मौजूद भाषा के वैविध्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

इस लघु शोध-प्रबंध की योजना में बहुत लोगों का सहयोग रहा है। सबसे पहले मैं अपने माता-पिता का ऋणी हूँ। जिनका सकारात्मक सहयोग जीवन के प्रत्येक पड़ाव में मुझे मिलता रहा है। मैं अपने शोध निर्देशक प्रो. गजेंद्र पाठक के प्रति हार्दिक कृतज्ञ हूँ जिनके सहयोग और मार्गदर्शन के बिना यह शोध-कार्य असंभव था। जब-जब मैं निराश हुआ, इन्होंने निरंतर मेरा मनोबल बढ़ाया और उत्साहित किया। विभागाध्यक्ष एवं मेरे शोध सलाहकार प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सहयोग और अनुशासन से इस शोध की निरंतरता बनी रही। विभाग के अन्य प्राध्यापकों के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ जिनका प्रत्यक्ष और परोक्ष सहयोग मेरे ज्ञान की वृद्धि करता रहा। विशेषकर भीम सर और श्याम राव सर का जिन्होंने नज़ीर से मेरा आरंभिक परिचय कराया। मैं अपने

अग्रज एवं मित्रों का आभारी हूँ जिनका निरंतर सहयोग मेरे साथ बना रहा सुरेन्द्र, पराग, लोकेन्द्र, सुप्रभा, निकिता, आरती, एकता, लक्ष्मण, विश्वजीत, पंचानन, विनायक भैया, नागेंद्र भैया और प्रकाश भैया। अंत में मैं अपने दोनों भाई कौस्तुभ रंजन और लोकेश रंजन को विशेष धन्यवाद देता हूँ जिनसे मुझे बहुत सी औपचारिक-अनौपचारिक शिक्षा मिली...।

– कुमुद रंजन मिश्र

# <u>प्रथम अध्याय</u>

# हिंदी साहित्य में नज़ीर अकबराबादी

**1.1 हिंदी साहित्य के इतिहास में नज़ीर अकबराबादी**

1.1.1 हिन्दुई साहित्य का इतिहास : लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

1.1.2 द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान : जॉर्ज ए. ग्रियर्सन

1.1.3 मिश्रबंधु विनोद : मिश्रबंधु

1.1.4 ए हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिटरेचर : एफ. ई. केय

1.1.5 हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल

1.1.6 हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : डॉ. बच्चन सिंह

**1.2 हिंदी आलोचना में नज़ीर अकबराबादी**

## प्रथम अध्याय

# हिंदी साहित्य में नज़ीर अकबराबादी

हिंदी की साहित्यिक परंपरा को लगभग एक हजार वर्ष हो गये। पिछले एक हजार साल में हिन्दी कविता सरहपा और ख़ुसरो से होते हुए जहाँ आज आयी है, उसमें कई तरह के परिवर्तन हुए हैं। कथ्य, शैली, छंद, विधा आदि तो बदले ही, भाषा भी बदली है। हिंदी साहित्य का इतिहास लिखते हुए इतिहासकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि के अनुरूप इन्हें चिह्नित करने का प्रयास किया। परिणामतः आज हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की भी एक लम्बी परंपरा हमारे सामने है। गार्सा-द-तासी से लेकर आज तक हिंदी साहित्य के कई इतिहास लिखे गए जिनमें उन्होंने भिन्न-भिन्न दृष्टियों से हिंदी साहित्य के पूरे इतिहास को देखने का प्रयास किया है। इन सब ने हिंदी साहित्य की विभिन्न घटनाओं को अपने तईं दर्ज करने का प्रयास किया, किन्तु अब भी हिंदी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की जरूरत और संभावनाएं बनी हुई हैं। आलोचना दृष्टि, इतिहास बोध और शोध प्रक्रिया के संयुक्त प्रयास से किसी भी साहित्य के इतिहास के स्वरूप में परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। मुझे अपने इस शोध कार्य में यह बात शिद्दत से महसूस हुई कि हिंदी आलोचना और इतिहास-लेखन में नज़ीर की उपेक्षा का कारण आज पर्याप्त शोध का अभाव है।

नज़ीर अकबराबादी, हिंदी साहित्य के एक महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। साहित्य की दृष्टि से भी और भाषा की दृष्टि से भी। नज़ीर के बगैर समूचे हिंदी कविता में आधुनिक बोध पर बात करना न केवल अनुचित होगा अपितु तथ्यों का भ्रामक प्रस्तुतीकरण भी होगा। हिंदी साहित्य में नज़ीर का समय रीतिकाल का उत्तरार्द्ध है। इनका जन्म 1735 ई. में दिल्ली में हुआ था और बाद में ये आगरा में बस गए। नज़ीर अकबराबादी अपने समय के लोक-प्रसिद्ध कवियों में हैं। उनकी कविता का क्षेत्र भी बहुत विशाल है। आश्चर्य होता है जब हिंदी साहित्य के इतिहासकार उन्हें उपेक्षित छोड़ देते हैं। नज़ीर का साहित्य हिंदी और उर्दू दोनों में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। फिर भी नज़ीर को

हिंदी आलोचना और इतिहास में उपेक्षित रखा गया। हिंदी साहित्य में अब तक उनका उचित मूल्यांकन नहीं मिलता। हिंदी में पिछले कुछ वर्षों से नज़ीर की ओर ध्यान गया है किन्तु उस रूप में नहीं जितना जाना चाहिए था। हिंदी साहित्य के इतिहास में सर जॉर्ज ग्रियर्सन, मिश्रबंधु और आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास ग्रंथों में इनका परिचय मात्र ही मिलता है। जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार 'नज़ीर की ओर अंग्रेजों का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय श्रीमान एस. डब्लु. फेलन को जाता है। 'हिन्दुस्तानी डिक्शनरी' में सर फेलन ने नज़ीर का ज़िक्र किया है। परवर्ती काल के इतिहास ग्रंथों में तो नज़ीर को भुला ही दिया गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की टिप्पणी को देखा जाए तो वह भी नज़ीर पर चलते-चलते ही बात करते हैं। वह उन्हें 'एक मनमौजी सूफी भक्त'[1] मात्र कहकर छोड़ देते हैं। बाद के हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने भी इन्हें कोई विशेष महत्व नहीं दिया है। वास्तव में नज़ीर का साहित्य ऐसा नहीं है, जिसपर चलते ढंग से बात की जाए। नज़ीर एक बड़े कवि हैं, कथ्य की दृष्टि के साथ-साथ भाषा की दृष्टि से भी। बच्चन सिंह ने अवश्य कुछ ठहर कर नज़ीर की चर्चा की है।

नज़ीर वस्तुतः जन-सामान्य के कवि हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के लिए जन-भाषा को चुना। अमीर ख़ुसरो और कबीर की परंपरा में नज़ीर ऐसे कवि हैं जिनके यहाँ हिन्दुस्तानी तहज़ीब फलती-फूलती है। हिंदी खड़ी-बोली का विकास नज़ीर की कविताओं में व्यवस्थित रूप में मिलता है। आज विद्यालयों, विश्वविद्यालयों में खड़ी-बोली की हिंदी कविता पर बात करते हुए हम पहले पहल ख़ुसरो के यहाँ जाते हैं और फिर कबीर के बाद सीधे द्विवेदी युग में पहुँच जाते हैं जबकि द्विवेदी युग से बहुत पहले खड़ी बोली की हिंदी कविता बहुत व्यवस्थित रूप में हमें नज़ीर के यहाँ मिलती है-

'है दुनिया जिसका नाम मियां, यह और तरह की बस्ती है।

[1] शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2014 पृष्ठ संख्या- 420

जो महंगों को तो महंगी है, और सस्तों को यह सस्ती है।
यां हर दम झगड़े उठते हैं, हर आन अदालत बस्ती है।
गर मस्त करे तो मस्ती है, और पस्त करे तो पस्ती है ।
कुछ देर नहीं अंधेर नहीं इंसाफ और अदल परस्ती है।
इस हाथ करो उस हाथ मिले, यां सौदा दस्त ब दस्ती है।।'[2]

xx

'क्या बक़्त था वह हम थे जब दूध के चटोरे।
हर आन आंचलों के मामूर थे कटोरे... ।'[3]

xx

'जब फ़ागुन रंग झमकते हों तब देख बहारें होली की।
और दफ के शोर खड़कते हों तब देख बहारें होली की।।'[4]

इन पंक्तियों में हम खड़ी-बोली को स्पष्टतः लक्षित कर सकते हैं। यह पंक्तियाँ रीतिकाल की हैं और आगरे में ही लिखी गयी हैं। इसका वाक्य-विन्यास हमारे आज के प्रयोग की खड़ी-बोली से साफ़ मिलता है। इनकी काव्य भाषा पर आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी। यहाँ यह स्पष्ट कर देना पर्याप्त है कि हिंदी खड़ी-बोली की काव्य परंपरा में ख़ुसरो और कबीर के बाद पहले पहल नज़ीर का नाम लेना ही तर्कसंगत होगा।

साहित्य में नज़ीर का महत्व दो दृष्टियों से है पहला तो यह कि इन्होंने हिंदी कविता को रीतिकालीन दरबारों से मुक्त किया और दूसरा यह कि हिंदी कविता में आधुनिकता का सूत्रपात

[2] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या -104
[3] वही, पृष्ठ संख्या -280
[4] वही, पृष्ठ संख्या -348

इन्हीं से हुआ। हिंदी के माने हुए इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल का समय 1643 ई. से 1843 ई. बताया है, नज़ीर का जीवन काल 1735 ई. से 1830 ई. माना जाता है अतः कालक्रम की दृष्टि से नज़ीर का समय रीतिकाल ही ठहरता है। रीतिकाल के प्रायः साहित्यकार राज-दरबारों की शरण में थे किन्तु नज़ीर ने राज-दरबार नहीं ग्रहण किया। ऐसा भी नहीं था कि इन्हें किसी राज-दरबार से आमंत्रण नहीं था। लखनऊ के नवाब सआदत अली खां और भरतपुर के राजा ने इनकी काव्य-प्रसिद्धि सुनकर इन्हें दरबार का निमंत्रण भेजा था किन्तु नज़ीर ने राजाश्रय ठुकराने की हिम्मत दिखाई। अतः यह कहना उचित नहीं कि रीतिकालीन कविता को राजाश्रय से मुक्त करने का काम भारतेंदु ने किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे इतिहासकार से भी जब यह त्रुटि होती है तब उनके ऐतिहासिक विवेक पर प्रश्न चिह्न लगाना अनिवार्य हो जाता है। द्विवेदी जी 'हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास' में लिखते हैं -

" भारतेंदु का पूर्ववर्ती काव्य साहित्य संतों की कुटिया से निकलकर राजाओं और रईसों के दरबार में पहुँच गया था... उन्होंने एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ उसे दरबारीपन से निकाल कर लोक-जीवन के आमने-सामने खड़ा कर दिया। "[5]

स्पष्ट है द्विवेदी जी ने नज़ीर को नहीं पढ़ा था। इसके पीछे का कारण क्या होगा नहीं कहा जा सकता किन्तु यह कहना कि नज़ीर पर उनकी नज़र नहीं पड़ी होगी, अनुचित होगा क्योंकि इनसे पहले के तीनों महत्वपूर्ण इतिहासकारों ने अपने इतिहास ग्रंथ में इनका ज़िक्र किया था। जॉर्ज ग्रियर्सन, मिश्रबंधु और आचार्य शुक्ल तीनों ने ही नज़ीर पर चलते ढंग से ही सही, पर बात की है।

[5] हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, 1992, पृष्ठ संख्या – 210

नज़ीर न केवल भारतेंदु से बहुत पहले हिंदी कविता को शाही दरबारों से मुक्त कराते हैं अपितु रीतिकालीन काव्य-बोध से अलग हट कर काव्य रचना करते हैं। भारतेंदु से बहुत पहले इनकी कविता में लोक के दर्शन होते हैं। नज़ीर का काव्य-संसार बहुत व्यापक है। इनकी रचनाएँ एक ओर सांस्कृतिक-समरसता को अभिव्यक्ति देती हैं तो दूसरी ओर अध्यात्म की भी चर्चा करती हैं। एक ओर सांसारिक उत्सवधर्मिता को अभिव्यक्त करती हैं तो दूसरी ओर सांसारिक क्षण-भंगुरता की बात भी करती हैं। एक तरफ जहाँ उनकी कविता में पशु-पक्षी ('गिलहरी का बच्चा, कबूतरबाज़ी') आते हैं तो दूसरी तरफ उनके यहाँ 'आदमीनामा' जैसी रचना मिलती है। कहीं मुफ़्लिसी और गरीबी पर उनकी कविता मिलती है तो कहीं पर्व-त्यौहारों पर उनकी नज़्में, कहीं कृष्ण और सुदामा उनकी रचनाओं में मिलते हैं तो कहीं नानक और कहीं शेख सलीम चिश्ती। ककड़ी, तिल के लड्डू, बचपन, बुढ़ापा जैसे साधारण से साधारण विषय पर उन्होंने अपनी लेखनी चलायी। नज़ीर के यहाँ व्यापक लोक-जीवन मिलता है। वास्तव में नज़ीर हिंदी के पहले आधुनिक कवि हैं। विश्वनाथ त्रिपाठी ने आधुनिक दृष्टि के लिए सामाजिक उत्तरदायित्व को महत्वपूर्ण माना है।[6] नज़ीर की काव्य दृष्टि में यदि सामाजिक उत्तरदायित्व का भाव न होता तो वे 'शहरे आशोब' न लिखते, 'पेट की फिलासफी' न लिखते, 'आटे दाल का भाव' न लिखते। यह नज़ीर की अपने समाज के प्रति प्रतिबद्धता है कि अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के बाद उजड़े हुए शहर आगरा की जनता का दर्द वह अपनी कविता में दर्ज करते हैं-

'हो किस तरह न मुंह में जुबां बार बार बंद।
जब आगरे की ख़ल्क़ का हो रोज़गार बंद।।'[7]

[6] त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ संख्या- 15
[7] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या -484

आक्रमण के उपरांत शहर की दुर्दशा ऐसी हो गयी है कि तमाम तरह के रोजगार बंद पड़ गये हैं। स्थिति इतनी ख़राब है कि कवि कुछ बोलने की स्थिति में ही नहीं है। हर तरफ बेकारी ही बेकारी है –

‘कुछ एक दो के काम का रोना नहीं है यार।

छत्तीस पेशे वालों के हैं कारोबार बंद।।’[8]

इन पंक्तियों को देखिये-

‘जब आदमी के पेट में आती हैं रोटियां

फूली नहीं बदन में समाती हैं रोटियां।।’[9]

नज़ीर का काव्य-बोध, हम यहाँ से देख सकते हैं। रोटी मिलने का अनुभव केवल खुश होने से बहुत बढ़कर है।

‘जो इस हवा में यारो दौलत में कुछ बड़े हैं

है उनके सर पर छतरी, हाथी ऊपर चढ़े हैं।

हम से ग़रीब गुरबा कीचड़ में गिर पड़े हैं ।

हाथों में जूतियां है और पांयचे चढ़े हैं।

क्या-क्या मची है यारों बरसात की बहारें।।’[10]

xx

[8] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या -486

[9] वही, पृष्ठ संख्या -214

[10] वही, पृष्ठ संख्या -455

‘ठिलिया, चपाती, हलवे की तो सबमें चाल है।

अदना गरीब के तई यह भी मुहाल है ।।

काले से गुड़ की लपसी कढ़ी की मिसाल है।

पानी की हांड़ी, गेहूं की रोटी भी लाल है ।

करती है दुखिया पिसनहारी शब्बरात।।’[11]

नज़ीर चाहे बरसात पर लिख रहें हों या शब्बरात पर उनकी चेतना में अभावग्रस्त जनता निरंतर मौजूद है। बरसात का केवल रोमानी चित्र नहीं बल्कि उसकी दिक्कतें भी हैं। जन-सामान्य के लिए, जिनके पास ऊँची इमारतें तो क्या पक्के मकान भी नहीं हैं उनके लिए बरसात बहुत बड़ी मुसीबत है, किन्तु उतनी ही आवश्यक भी है। बरसात फसलों के लिए आवश्यक है, बरसात के बिना अंकुरण असंभव है। ईद हो दिवाली हो, होली या शब्बरात हो साधारण जनता को वे भूलते नहीं हैं।

रीतिकालीन दरबारी चेतना से यह बहुत अलग चित्र है। इनके यहाँ राजाओं की झूठी प्रशस्ति नहीं है। न उनकी वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन। नज़ीर को अशरफियों की लालसा नहीं थी। नज़ीर का तो ख़याल था –

‘इस लोभपुरी की गलियों की जब मुंह पर तेरे धुल पड़ी

बेचैन रहेगा हर साअत आराम न होगा एक घड़ी।।’[12]

[11] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या- 316

[12] वही, पृष्ठ संख्या-190

नज़ीर की कविताओं में चाँद और सूरज में नायिका का बिंब नहीं दिखता। उनमें उन्हें रोटी नजर आती है –

‘पूछा किसी ने यह किसी कामिल फ़क़ीर से

यह मेहरो माह हक़ ने बनाए हैं काहे के

वह सुनके बोला बाबा ख़ुदा तुझको खैर दे

हम तो न चाँद समझें, न सूरज हैं जानते

बाबा हमें तो यह नज़र आती हैं रोटियां।।’[13]

नज़ीर की कविता 18 वीं सदी में जिन स्वरों को अभिव्यक्ति दे रही थी वह स्वर ‘आधुनिक कविता’ में बहुत बाद में आता है।

नज़ीर के यहाँ हिंदी-उर्दू का भेद नहीं है। सही मायनों में वे ‘हिन्दुस्तानी के कवि’ हैं। उनके काव्य में भी हिन्दुस्तानी लोक-संस्कृति की अभिव्यक्ति है। ऐसे में क्या कारण हो सकते हैं कि नज़ीर को हिंदी आलोचना में इस तरह भुला दिया गया? क्या आलोचकों की दृष्टि के आगे रीतिकाल की प्रवृत्ति हावी हो गई? क्या रीतिकाल का युगबोध आलोचकों को नज़ीर के साहित्य की ओर जाने से रोकता है? या रामचंद्र शुक्ल का अनुकरण करते हुए आलोचकों की दृष्टि, धारा-विशेष से अलग हटकर रचने वाले साहित्यकारों की ओर नहीं गयी? या उर्दू साहित्य में भी होने के कारण हिंदी आलोचना नज़ीर की ओर से विमुख हो गयी?

नज़ीर इसी परंपरा के कवि हैं, समन्वय की भावना उनके यहाँ कूट-कूट कर भरी है जहाँ एक ओर वे होली और दिवाली पर लिखते हैं, वहीं दूसरी ओर शब्बरात और ईद पर लिखा, जब कृष्ण

[13] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-215

और महादेव पर लिखा तो हम्द, हज़रत अली, पैगम्बर तथा फकीरों पर भी लिखा। किन्तु फिर भी नज़ीर हिंदी आलोचना में उपेक्षित रहे। धार्मिक और सांप्रदायिक रूप से संवेदनशील अपने इस देश में नज़ीर जैसे कवि हमेशा बने रहेंगे। भाषा की दृष्टि से भी नज़ीर महत्वपूर्ण कवि हैं। खड़ी-बोली उनके यहाँ भारतेंदु और द्विवेदी युग से कहीं पहले व्यवस्थित रूप में नज़र आती है। जैसा कि पहले भी बात की जा चुकी है और आगे नज़ीर की काव्य-भाषा पर बात करते हुए विस्तार से इसकी चर्चा की जाएगी, किन्तु नज़ीर के इस अवदान को भी कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया। वस्तुतः नज़ीर की कविताएँ लोकोन्मुखी हैं इसलिए वह सर्वकालिक हैं। बाज़ार, मेले, खेल-तमाशे जैसे साधारण विषय पर उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है, किन्तु उनमें भी उनकी दृष्टि सतर्क है। बाज़ार का भ्रष्टाचार उनकी दृष्टि से बच नहीं पाया है। इसके साथ अपने समय की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति पर भी उन्होंने गंभीरता से लिखा है। आगे हिंदी साहित्य के इतिहास और आलोचना में नज़ीर की उपस्थिति और अनुपस्थिति को लेकर विस्तार से बात की जाएगी।

## 1.1 हिंदी साहित्य के इतिहास में नज़ीर अकबराबादी

हिंदी साहित्य के आरंभिक इतिहास ग्रंथों में नज़ीर का उल्लेख मिलता है। गार्सा-द-तासी से लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल तक लगभग इतिहासकार इनसे परिचित थे और इनका उल्लेख अपने साहित्येतिहास ग्रंथ में करते हैं। कहीं-कहीं सूचनाओं में अंतर अवश्य मिलता है। जिनकी चर्चा आगे विस्तार से की जा रही है-

### 1.1.1 हिन्दुई साहित्य का इतिहास(1952) : लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (अनुवाद)

(मूल- इस्तावार द ला लितरेत्यूर ऐन्दूइ ऐन्दूस्तानी, 1839 - गार्सा-द-तासी)

यह किताब वस्तुतः गार्सा-द-तासी के 'इस्तावार द ला लितरेत्यूर ऐन्दूइ ऐन्दूस्तानी' का अनुवाद है, जो लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने किया है। इस किताब के पृष्ठ संख्या- 274 में 'वली मुहम्मद' का उल्लेख है, आगे विवरण में तासी 'वली' को कृष्ण भक्त बताते हैं और उनकी दो रचनाओं 'श्री कृष्ण की जनमलीला' और 'बालपन बाँसुरी लीला' का उल्लेख करते हैं। नज़ीर का वास्तविक नाम 'वली मुहम्मद' था। उन्होंने अपना तखल्लुस 'नज़ीर' रखा था और बाद में आगरे से प्रेम के कारण नज़ीर के आगे 'अकबराबादी' जुड़ गया। कृष्ण पर तो नज़ीर की कई नज़्में हैं जिनमें 'जनम कन्हैया जी' और 'बालपन-बाँसुरी बजैया का' नाम की भी नज़्में हैं अतः तासी ने जिस 'वली' का उल्लेख किया है वह संभवतः नज़ीर ही हैं, संभवतः इसलिए कहना पड़ रहा है क्योंकि तासी ने अपने इतिहास ग्रंथ में वली मुहम्मद का तख़ल्लुस 'मीर' बताया है। संभवतः तासी ने नज़ीर और मीर को एक ही समझ लिया होगा। इसकी संभावना इसलिए बढ़ जाती है चूंकि तासी ने भारतीय/ हिन्दुई साहित्य का इतिहास फ्रांस और इंग्लैंड में बैठकर लिखा था, वे कभी भारत नहीं आये। वहाँ उन्हें जिस रूप में, जो सामग्री मिली उन्होंने उसी का उपयोग किया। इतिहास ग्रंथ की प्रायः सामग्री तासी ने लंदन के ईस्ट इंडिया हाउस के पुस्तकालय से प्राप्त की।

हाल में तासी द्वारा फ़्रांस में ली गयी हिन्दुस्तानी की कक्षाओं के कुछ व्याख्यान का हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। इनमें एक व्याख्यान 4 दिसम्बर 1851 का है जिसमें नज़ीर का उल्लेख मिलता है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि तासी नज़ीर से अपरिचित थे। तासी नज़ीर से भली-भाँति परिचित थे। इसके अतिरिक्त तासी मीर से भी भली-भाँति परिचित थे उन्होंने अपने इतिहास

ग्रंथ की भूमिका में कई जगह मीर का उल्लेख 'मीर तक़ी' नाम से किया है तथा उनकी रचना 'निकात्-उस्-शुअरा', जो वास्तव में एक तज़किरा है, का भी ज़िक्र किया है।

### 1.1.2 द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान (1888) – जॉर्ज ग्रियर्सन

सर जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा लिखित इस ग्रंथ में नज़ीर का उल्लेख मिलता है। अपने इस ग्रंथ में उन्होंने नज़ीर को सन् 1600 के पहले का बताया है। ग्रियर्सन ने बताया है कि नज़ीर से यूरोपियों का परिचय सर एस. डब्लू. फेलन के हवाले से हुआ और ये काफी प्रसिद्ध कवियों में गिने जाते हैं। वस्तुतः ग्रियर्सन नज़ीर के बारे में जो लिखते हैं उससे लगता है कि वे उन्हें बहुत अच्छा कवि नहीं मानते थे। उनका मानना है कि नज़ीर की कविताएँ एक विशेष वर्ग तक ही सीमित हैं जो तुलसी, सूर और जायसी की तरह सर्व-स्वीकृत नहीं है। ग्रियर्सन ने नज़ीर की रचनाओं के लिए 'filthy', 'indecent' और 'unreadable' शब्द का प्रयोग किया है जिसका हिंदी पर्याय क्रमशः 'अशुद्ध/अश्लील', 'भद्दा' और 'अपठनीय' होगा। इतना ही नहीं नज़ीर पर बात करते हुए ग्रियर्सन 'हिन्दुस्तानी डिक्शनरी' के लेखक सर फेलन की साहित्यिक समझ पर भी प्रश्न-चिह्न लगाते हैं।

संभवतः ग्रियर्सन भी नज़ीर के साहित्य से पूरी तरह परिचित नहीं होंगे अन्यथा वे इन शब्दों का इस्तेमाल नहीं करते। यदि हम 'द मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान' की भूमिका पढ़ें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने रचनाकारों की रचनाओं के केवल नमूने पढ़े हैं और उन (रचनाकारों) पर कुछ लिखित जो कुछ लेख उन्हें मिले। ग्रियर्सन ने उन्हें ही अपना आधार बनाया चूंकि वे स्वयं बहुत सी रचनाओं को समझने में असमर्थ थे।

"मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने इन पृष्ठों में सूचीबद्ध साहित्य के इस बड़े हिस्से को पूरा या बहुत हद तक भी पर पढ़ लिया है, किंतु मैंने इन सभी नौ सौ बावन रचनाकारों की कृतियों के नमूने देखे

और पढ़े हैं जिनका नाम यहां उल्लिखित है। मैं यह भी दावा नहीं करता की जो कुछ मैंने पढ़ा है वह पूरी तरह से मेरी समझ में आ गया; चूंकि उनमें बहुत से नमूने इतने कठिन थे कि बिना किसी मौखिक व लिखित टिप्पणी की सहायता के मेरे लिए उसकी व्याख्या असंभव थी।"[14]

यही कारण है कि वे अपनी इस किताब को औपचारिक इतिहास नहीं कहते। नज़ीर के संबंध में हो सकता है उन्होंने कोई लेख पढ़ा हो जिसके अनुसार उन्होंने नज़ीर के बारे में अपनी यह राय बना ली। वास्तव में नज़ीर के समकालीन लेखक और दरबारी साहित्यकार भी नज़ीर को बहुत अच्छा कवि नहीं मानते थे क्योंकि उनकी भाषा दरबार की परिष्कृत भाषा न होकर जन-सामान्य की भाषा थी। उनकी कविता के विषय भी साधारण जीवन से संबंधित होते थे। जिन सर फेलन का ज़िक्र ग्रियर्सन करते हैं उन्होंने 'हिन्दुस्तानी डिक्शनरी' में नज़ीर की तुलना यूरोपीय कवियों से की है और ये भी माना है कि कविता के यूरोपीय मान-दण्ड के अनुसार भारत में नज़ीर ही एक मात्र कवि हैं जिसे वास्तव में कवि कहा जा सकता है। संभवतः ये बात फेलन वर्ड्सवर्थ के हवाले से कह रहे होंगे।

### 1.1.3 मिश्रबंधु विनोद (1913) – मिश्रबंधु

मिश्रबंधु कृत 'मिश्रबंधु विनोद' में प्रौढ़ माध्यमिक तुलसी-काल में एक 'नज़ीर आगरेवाले' का उल्लेख मिलता है। इनके विवरण में मिश्रबंधुओं ने केवल इतना लिखा है - 'आप कृष्ण भक्त कहे जाते हैं'[15] इसमें नज़ीर का समय विक्रम संवत् 1657 के पूर्व बताया गया है तथा नज़ीर की रचना के रूप में 'रानी केतकी की कहानी' का उल्लेख हुआ है जो खड़ी बोली हिंदी में है। मिश्रबन्धुओं

[14] "I do not pretend to have read all.........either oral or documentary." Grierson, George A., The Modern Vernacular Literature Of Hindustan, Asiatic Society Calcutta, 1889, Preface(viii-ix)

[15] मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, वि.सं. 1994, पृष्ठ संख्या – 371

ने लिखा 'ग्रंथ - रानी केतकी की कहानी हिंदी (खड़ी बोली में)। यह ग्रंथ इंशाअल्ला का कहा जाता है। शायद नज़ीर ने कोई दूसरा ग्रंथ इसी नाम का लिखा हो।'[16] मिश्रबंधुओं ने नज़ीर के संबंध में जो विचार प्रस्तुत किए हैं उससे यही लगता है कि उनके पास भी नज़ीर संबंधित पर्याप्त तथ्य नहीं थे। बावजूद इसके कि सन् 1900 से 1911 तक काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने पुस्तकों की खोज की और उसके उपरांत 1913 में 'मिश्रबंधु-विनोद' का प्रकाशन हुआ था।

### 1.1.4 ए हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिटरेचर (1920) – एफ. ई. केय

एफ.ई. केय कृत 'ए हिस्ट्री ऑफ़ हिंदी लिटरेचर' सन् 1920 में प्रकाशित हुई। उन्होंने अपनी इस किताब के अंतर्गत 'Bardiac and Other Literature of the Literature' नामक काल के अंतर्गत नज़ीर का उल्लेख एक प्रतिभाशाली कवि के रूप में किया है। उन्होंने यह भी बताया है कि उनकी रचनाएँ जन-सामान्य के बीच बहुत प्रचलित हैं और प्रायः लोगों द्वारा उद्धृत की जाती है किन्तु उनमें से बहुत सी अश्लील कही जाती हैं। वस्तुतः केय द्वारा लिखित इस किताब पर बहुधा ग्रियर्सन के इतिहास ग्रंथ 'द मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान' की छाया दिखती है। केय की इस किताब की इतिहास सामग्री लगभग ग्रियर्सन के इतिहास से ली गयी है। अतः नज़ीर संबंधी यह विचार भी वहीं से प्रभावित है। ग्रियर्सन ने भी नज़ीर की कविता को अश्लील और भद्दा कहा है। अतः केय भी ग्रियर्सन का अनुसरण करते हुए नज़ीर की कविताओं को अश्लील और भद्दा कहते हैं।

[16] मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, वि.सं. 1994, पृष्ठ संख्या – 371

### 1.1.5 हिंदी साहित्य का इतिहास (1929) – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', हिंदी साहित्य का अब तक का सबसे व्यवस्थित इतिहास माना जाता है। शुक्ल जी के इतिहास में नज़ीर का उल्लेख आधुनिक काल के प्रकरण-2 (काव्यखंड) के अंतर्गत मिलता है। शुक्ल जी ने कविता की भाषा पर विचार करते खड़ी-बोली के आरंभिक कवियों में नज़ीर का नाम भी लिया है। आचार्य शुक्ल ने लिखा 'कृष्णलीला संबंधी बहुत से पद्य हिंदी खड़ी-बोली में लिखें'[17]। शुक्ल जी नज़ीर को हिंदी खड़ी-बोली की काव्य परंपरा में स्थान तो देते हैं परन्तु फिर भी वह महत्व नहीं देते हैं जो उन्हें मिलना चाहिए था। संभवतः शुक्ल जी भी नज़ीर की रचनाओं से पूर्णतः परिचित नहीं थे। यही कारण है कि वे बहुत ही सतही तौर पर नज़ीर का ज़िक्र करते हैं। यह मुझे इसलिए कहना पड़ रहा क्योंकि शुक्ल जी ने कविता की समीक्षा के जो पैमाने तय किए हैं उनके बरअक्स नज़ीर की कविता पर नज़र डाली जाए तो नज़ीर का नाम सर्व-प्रमुख कवियों में होगा।

### 1.1.6 हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (1996) – डॉ. बच्चन सिंह

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद नज़ीर हिंदी साहित्य के इतिहास से लगभग गायब ही हो जाते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी से लेकर रामस्वरूप चतुर्वेदी तक डॉ. नगेन्द्र, धीरेन्द्र वर्मा तक किसी ने अपने इतिहास ग्रंथ में नज़ीर का ज़िक्र नहीं किया है। नागरी-प्रचारिणी सभा ने 16 खण्डों में हिंदी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया किन्तु उसमें भी नज़ीर कहीं नहीं दिखते हैं। सन् 1996 में प्रकाशित 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' में बच्चन सिंह नज़ीर की चर्चा करते हैं। लगभग 6 दशक बाद बच्चन सिंह ने हिंदी साहित्य के इतिहास में नज़ीर को पुनः स्थान दिया। नज़ीर की मृत्यु

---

[1717] शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ संख्या--420

के लगभग डेढ़ सौ साल बाद बच्चन सिंह ने नज़ीर के महत्व को समझा। यही कारण है कि बच्चन सिंह लिखते हैं- 'समूचे रीतिकाल में नज़ीर अपनी साधारणता में असाधारण हैं' ।[18] बच्चन सिंह, उर्दू और हिंदी कवियों के बरअक्स नज़ीर की कविता के लिए एक नया सौंदर्यशास्त्र गढ़ने की बात करते हैं, जो सामंती सौन्दर्यशास्त्र से अलग हो। उन्होंने कविता को आसमान से उतारकर धरती पर लाने का श्रेय नज़ीर को दिया है- 'इसमें संदेह नहीं कि वे (नज़ीर) कविता को आसमान से उतारकर धरती पर ले आये जिसमें आम आदमी के सुख-दुःख, मेला-ठेला, श्रद्धा-भक्ति आदि को बोलचाल की भाषा में अभिव्यक्ति मिली है।'[19]

बच्चन सिंह ने अपने इतिहास ग्रंथ में नज़ीर को पर्याप्त महत्व दिया है। वे कविता में अंदाज़ेबयाँ के बजाय सहजता को अधिक महत्व देते हैं जो उन्हें नज़ीर के यहाँ मिलता है। किन्तु वे नज़ीर को उर्दू तक सीमित कर देते हैं। डॉ. सिंह नज़ीर को उर्दू का कवि मानते हैं। उन्होंने अपने इतिहास ग्रंथ के जिस भाग में नज़ीर को रखा है उसका नाम उन्होंने रखा 'हिंदी की उर्दू शैली की कविता'। प्रश्न उठता है, यह उर्दू शैली क्या है ? इस भाग में उन्होंने मीर और ग़ालिब के साथ नज़ीर को रखा है। डॉ. सिंह लिखते हैं – 'हिंदी की उर्दू शैली की कविता की शुरुआत रीतिकाल में हुई। पर उस समय हिंदी कविता ब्रज में लिखी जा रही थी और उर्दू कविता खड़ी बोली में।'[20] यहाँ उर्दू कविता से उनका अभिप्राय कुछ अस्पष्ट लगता है। संभवतः उर्दू कविता से उनका अभिप्राय नस्तालीक़ लिपि से है और हिंदी का देवनागरी से। संभवतः इसी आधार पर उन्होंने नज़ीर, ग़ालिब और मीर के लिए रीतिकाल के भीतर अलग उप-भाग बनाया। यहाँ ये बात सोचने वाली है कि यदि नस्तालीक़ में लिखने से कोई रचनाकार उर्दू का हो जाता है तो इतिहासकारों को सूफी कविताओं पर पुनर्विचार करना पड़ेगा क्योंकि जायसी, मुल्ला दाउद, नूर मुहम्मद आदि सूफी परंपरा के तमाम कवियों की

[18] सिंह, डॉ. बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या- 244

[19] वही, पृष्ठ संख्या- 245

[20] वही, पृष्ठ संख्या- 237

लिपि नस्तालीक़ थी। साथ ही रहीम, रसखान आदि भक्त कवियों की लिपि पर भी विचार करना पड़ेगा।

## 1.2 हिंदी आलोचना में नज़ीर अकबराबादी

हिंदी आलोचना का ध्यान नज़ीर पर अब तक नहीं गया है। इधर पिछले कुछ वर्षों में नज़ीर पर कुछ एक-दो लेख जरूर प्रकाशित हुए हैं जिनमें नज़ीर की कविता के महत्व पर चर्चा की गई है, किन्तु अब भी हिंदी आलोचना में नज़ीर पर बहुत व्यवस्थित ढंग से विचार नहीं किया गया है। नज़ीर की कविता के एक दो संग्रह आये हैं जिनमें भूमिका के रूप में नज़ीर के काव्य वैविध्य पर चर्चा हुई है। इनमें से एक 'नज़ीर की बानी' नाम से फ़िराक गोरखपुरी द्वारा संपादित किताब है। जिसमें उन्होंने नज़ीर की 51 रचनाओं को संग्रहीत किया है। इसकी भूमिका लिखते हुए फ़िराक़ ने बताया है कि नज़ीर सांसारिकता से अलग एकांत में रहकर कविता करने वाले कवि नहीं है जैसी आमतौर पर कवियों को लेकर धारणा प्रचलित है। नज़ीर 'दुनिया के रंग में रँगे हुए एक महाकवि थे' उनकी कविताओं की विशेषता बताते हुए फ़िराक ने लिखा है –

'नज़ीर की कविताओं में उनके समय का जीवन, हर स्तर, हर वर्ग, हर तरह, हर रंग, हर ढंग, हर अवस्था, हर स्थिति का जीवन इतने भरपूर ढंग से अपनी पूरी गतिशीलता के साथ और इतने स्वाभाविक और सजीव रूप में चित्रित हुआ है कि भाषा, संस्कृति, संप्रदाय, जाति-धर्म-सब भेद मिट गए हैं'[21]

नज़ीर की भाषा के संबंध में भी फ़िराक का विचार महत्वपूर्ण है। फ़िराक ने नज़ीर की भाषा को 'बचपन' या 'लड़कपन' की उर्दू बताया है अर्थात उर्दू का आरंभिक रूप नज़ीर की कविताओं में

---

[21] गोरखपुरी, फ़िराक़, नज़ीर की बानी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ संख्या- 8, 9

नज़र आता है। नज़ीर की कविताओं में ठेठपन का जादू है। वास्तव में फ़िराक ने नज़ीर की भाषा की तुलना अनीस, चकबस्त, और इकबाल से करना अन्यायपूर्ण माना है। फ़िराक ने विषय प्राचुर्यता की दृष्टि से नज़ीर को सबसे महत्वपूर्ण कवि माना है।

इधर कुछ वर्ष पूर्व बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक आशीष त्रिपाठी ने नज़ीर की रचनाओं के संदर्भ में एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था 'महिमा भी रहे जिसका नाम नज़ीर' इस लेख में आशीष जी ने नज़ीर की कविताओं पर गंभीरता से विचार किया है। उन्होंने नज़ीर को प्रत्यक्ष के कवि के रूप में नागार्जुन का पूर्वज बताया है। नज़ीर की कविताओं पर बात करते हुए उन्होंने नज़ीर को इहलोक का कवि बताया है जिसके लिए परलोक से ज्यादा महत्वपूर्ण इहलोक है। वह इहलोक जिसे हम प्रायः 'माया' मानते आये हैं नज़ीर ने उस पर कविता की –

'वो वस्तुएँ जिन्हें हम माया के नाम पर सदियों से नकारते रहे नज़ीर उन्हें कविता के केंद्र में लाते हैं'[22]

नज़ीर की भारतीय समाज की समझ पर विचार करते हुए उन्होंने बताया कि नज़ीर भारतीय समाज की समझ रखने वाले कवियों में सबसे बेहतर है। उन्होंने नज़ीर को भारतेंदु, नागार्जुन और त्रिलोचन का पूर्वज कवि माना है। वे लिखते हैं –

'हिन्दुस्तान में उभरती हुई लौकिक चेतना के पहले बड़े कवि नज़ीर अकबराबादी हैं। नज़ीर भारतेंदु, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन के पूर्वज हैं।'[23]

कविता की दुनिया को अस्पृश्यता से मुक्त कराने वाले कवि के रूप में आशीष जी ने नज़ीर की कविता का उल्लेख किया है। नज़ीर अपने आस-पास की तमाम चीजों को, घटनाओं को, व्यक्ति

---

[22] सिंह, डॉ. प्रभाकर, रीतिकाव्य: मूल्यांकन के नए आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृष्ठ संख्या- 283

[23] वही, पृष्ठ संख्या- 284

को कविता का विषय बनाते हैं। उनके यहाँ कविता के विषय को लेकर कोई छुआछूत की भावना नहीं है। आशीष जी, नज़ीर की काव्य-चेतना की तुलना कबीर से करते हैं। वे बताते हैं नज़ीर की काव्य-चेतना कामगर वर्ग की काव्य-चेतना है ठीक उसी तरह जैसे कबीर की काव्य-चेतना शिल्पी वर्ग की है। आशीष जी नज़ीर को काव्यशास्त्र के तमाम नियम तोड़ने वाले कवि के रूप में देखा है। वास्तव में नज़ीर की कविता छंद अलंकार के नियमों से इतर है।

नज़ीर संबंधी एक और लेख सत्यकेतु सांकृत ने लिखा है। इसका शीर्षक है 'साझी विरासत का प्रथम आधुनिक हिंदी कवि नज़ीर' इस लेख में जैसा की शीर्षक से स्पष्ट है प्रथम आधुनिक हिंदी कवि के रूप में नज़ीर पर विचार किया गया है। इसके साथ ही सांकृत जी ने फ़िराक़ के हवाले से नज़ीर के सांस्कृतिक पक्ष पर भी विचार करते हैं। उन्होंने नज़ीर की काव्य-चेतना पर बात करते हुए रीतिकालीन सामंती काव्य-चेतना से अलग बताया है।

वास्तव में नज़ीर के यहाँ जो जन-साधारण की चेतना मिलती है, वह उन्हें कबीर की परंपरा से जोड़ती है। नज़ीर जहाँ 'मुफलिसी' की बात करते हैं, जहाँ 'आटे-दाल का भाव' करते हैं और 'बरसात की बहारें' लिखते हुए भी उनके यहाँ साधारण जनता का पक्ष आता है। सांकृत जी उर्दू और हिंदी में नज़ीर पर विचार करते हुए दोनों साहित्य में नज़ीर की उपेक्षा का कारण तत्कालीन आलोचना का अविकसित अवस्था में होना बताते हैं। इन्होंने नज़ीर के संबंध में जो महत्वपूर्ण बात कही वह ये कि शुक्ल जी ने प्रतापनारायण मिश्र के संबंध में जिस 'पद्यात्मक निबंध' की बात कही दरअसल वह फ़ारसी की नज़्म है जो सबसे अधिक नज़ीर के यहाँ निखर के आती है–

'शुक्ल जी ने 'मुक्तक' और 'प्रबंध काव्य' के अतिरिक्त नए प्रकार की काव्य विधा 'पद्यात्मक निबंध' का उल्लेख किया है। 'पद्यात्मक निबंध' वस्तुतः फारसी की 'नज़्म' है, जिसे 'हिंदी/हिंदवी' कवियों ने अपनाया था, पर ग़ज़ल के सामने वह दबी रह गई थी। उसे पहली बार नज़ीर अकबराबादी ने महत्व दिया था। वस्तुतः नज़ीर अकबराबादी इस काव्य विधा के सबसे बड़े हिंदी

कवि हैं, पर शुक्ल जी ने यह श्रेय उन्हें नहीं दिया है। शुक्ल जी के अनुसार प्रतापनारायण मिश्र ने अपने लिए इस विधा का चयन किया।'[24]

सांकृत जी नज़ीर को जनकवि बताते हुए उनकी तुलना कबीर से करते हैं। वे आचार्य शुक्ल द्वारा की गयी नज़ीर की उपेक्षा पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि 'बहुत दिनों तक शुक्ल जी की यह धारणा बनी रही थी कि खड़ी-बोली कविता का माध्यम नहीं बन सकती है।'[25] शुक्ल जी द्वारा कबीर की उपेक्षा का कारण भी उन्होंने कुछ हद तक यही माना है और नज़ीर की उपेक्षा को भी वे शुक्ल जी की 'शिष्ट साहित्य' की अवधारणा से जोड़ते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सत्यकेतु सांकृत ने भी नज़ीर पर व्यवस्थित ढंग से विचार करने का प्रयास किया है।

स्पष्ट है कि नज़ीर पर हिंदी आलोचना और इतिहास में नज़ीर पर बहुत कम चर्चा हुई है। गार्सा-द-तासी से लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल तक हिंदी साहित्य के इतिहास में नज़ीर की उपस्थिति तो मिलती है किन्तु यह उपस्थिति उनके आंशिक साहित्य अर्थात उनकी कुछ-एक रचना के आधार पर ही है। उपर्युक्त इतिहासकारों के समक्ष नज़ीर के सम्पूर्ण साहित्य का अभाव रहा होगा। यही कारण है कि इन इतिहास ग्रंथों में नज़ीर से संबंधित सूचनाएं भ्रामक हैं। प्रायः इतिहास ग्रंथों में तो उनकी रचनाओं के नाम भी नहीं मिलते हैं। नज़ीर से संबंधित प्रामाणिक सूचनाएं केवल बच्चन सिंह के यहाँ मिलती हैं, चाहे वह रचनाकाल से संबंधित सूचना हो या उनकी रचनाओं से संबंधित हो। 'मिश्रबंधु-विनोद' में तो नज़ीर का समय और रचना दोनों ही भ्रामक है।

हिंदी के आरंभिक इतिहास में नज़ीर की उपस्थिति प्रायः दर्ज है, इसका एक-मात्र अपवाद 'शिवसिंह-सरोज' है। शिवसिंह सेंगर ने अपने इतिहास में नज़ीर का उल्लेख नहीं किया है। आचार्य

[24] http://www.hindisamay.com/content/7309/1/रचनाकार-सत्यकेतु-सांकृत-की-आलोचन-साझी-विरासत-का-प्रथम-आधुनिक-हिंदी-कवि-नज़ीर.cspx

[25] वही

शुक्ल के बाद के इतिहासकारों में बच्चन सिंह के अतिरिक्त अन्य किसी इतिहास में नज़ीर का उल्लेख नहीं मिलता। न डॉ. नगेंद्र के यहाँ और ना ही रामस्वरूप चतुर्वेदी के यहाँ। हिंदी के लोकवादी इतिहासकार माने जाने वाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि भी नज़ीर पर नहीं जाती। नवीन इतिहास-ग्रंथों में नज़ीर की उपेक्षा एक गंभीर दोष है क्योंकि यह केवल नज़ीर की उपेक्षा नहीं है अपितु यह मेल-जोल की उस पूरी संस्कृति की उपेक्षा है, जिसे हम सामासिक अथवा साझी संस्कृति कहते हैं तथा इसके सबसे बड़े नायक नज़ीर हैं। उस काल विशेष में उस प्रगतिशीलता की उपेक्षा की गयी जो आज कविताओं में खोजी जाती है और सबसे महत्वपूर्ण उस साधारण जन-जीवन की उपेक्षा की गयी, जिसकी अभिव्यक्ति नज़ीर की कविताओं में मिलती है।

वस्तुतः यह प्रश्न उपस्थिति-अनुपस्थिति का नहीं है, यह प्रश्न इतिहास बोध का है। प्रश्न साहित्य-विवेक का है। इतिहास में नज़ीर की उपेक्षा कोई साधारण बात नहीं है ठीक उसी तरह जैसे कबीर और मीरा की उपेक्षा साधारण बात नहीं है। हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रेमचंद पर व्यवस्थित रूप में बात नहीं होती है, मीर पर बात नहीं होती है, वली दक्कनी पर बात नहीं होती। यह कोई साधारण बात नहीं है। यह महज एक इत्तेफाक नहीं है कि आचार्य शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास में वे ही मुसलमान कवि मौजूद हैं जिनका झुकाव हिन्दू संस्कृति की ओर है। चाहे हम रहीम और रसखान की बात करें या जायसी की। नज़ीर की उपस्थिति भी आचार्य शुक्ल के इतिहास में इसी वजह से है। क्या कारण है कि आचार्य शुक्ल ने नज़ीर की चर्चा करते हुए वे ही पद प्रस्तुत किए जिनका संबंध कृष्ण से है। नज़ीर ने 'रोटीनामा' लिखा, 'आदमीनामा' लिखा, 'आटे दाल का भाव' लिखा, 'रूपये की फिलासफी' लिखी, 'पेट की फिलासफी' लिखी किन्तु इन सब पर बात नहीं होती है। समस्या यहाँ है।

आचार्य शुक्ल स्वयं कहते हैं "सच्चे कवि राजाओं की सवारी, ऐश्वर्य की सामग्री में ही सौंदर्य नहीं ढूंढा करते। वे फूस के झोंपड़ों, धूल व मिट्टी में सने किसानों, बच्चों के मुंह में चारा डालते

हुए परिवारों, दौड़ते हुए कुत्तों और चोरी करती हुई बिल्लियों में भी कभी-कभी सौन्दर्य के दर्शन करते हैं जिसकी छाया भी महलों और दरबारों तक नहीं पहुँच सकती।"[26] नज़ीर की कविताओं में 'कौए और हिरण की दोस्ती' है, 'रीछ का बच्चा' है, 'गिलहरी का बच्चा', 'बुलबुलों की लड़ाई', 'आगरे की तैराकी', 'आगरे की ककड़ी' आदि ऐसी कविताएँ हैं जो महलों और दरबारों के चमत्कारिक और सौंदर्यपूर्ण काव्य-विधाओं से कोसों दूर है। ऐसे में क्या कारण हो सकते हैं कि नज़ीर को हिंदी आलोचना और इतिहास में इस तरह भुला दिया गया? क्या आलोचकों की दृष्टि के आगे रीतिकाल की प्रवृत्ति हावी हो गई? क्या रीतिकाल का युगबोध आलोचकों को नज़ीर के साहित्य की ओर जाने से रोकता है? या रामचंद्र शुक्ल का अनुकरण करते हुए आलोचकों की दृष्टि, धारा-विशेष से अलग हटकर रचने वाले साहित्यकारों की ओर नहीं गयी अथवा उर्दू साहित्य में भी होने के कारण हिंदी आलोचना नज़ीर की ओर से विमुख हो गयी? संभवतः शुक्ल जी के यहाँ मज़हब का भी कुछ महत्व था अन्यथा जायसी के संदर्भ में वे यह नहीं कहते – 'इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता के साथ कहकर...'[27]।

यदि रीतिकालीन प्रवृत्ति के हावी होने की बात है तो रीतिमुक्त कविता का विधान किस लिये था? वास्तव में बात यह है कि हिंदी साहित्य के इतिहासकार वैसी रचनाशीलता, जो दोनों तहजीबों के बीच कोई सेतु बनाती है, को समझने के लिए तैयार नहीं थे और यह बात केवल हिंदी में नहीं है अपितु उर्दू साहित्य का भी यही हाल है।

स्वाधीनता आंदोलन की इसी पृष्ठभूमि में ही हमारा इतिहास बोध विकसित हुआ, नवजागरण की पृष्ठभूमि भी यही थी। सन् 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालना आरंभ किया। इसका प्रभाव हमारे इतिहास बोध पर भी पड़ा। हिंदी-उर्दू के साहित्य में भेद की

---

[26] शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, कविता क्या है?, चिंतामणि, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - 108

[27] शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, 2014, पृष्ठ संख्या - 89

नींव ग्रियर्सन ने रखी- "Nor do I record the names of Indian writers in Arabic or Persian, or in the exotic literary Urdu, and I have been the more willing to exclude these last from our present consideration..."[28]

बाद के इतिहासकार भी उनका अनुकरण करते चलते हैं। शुक्ल जी भी अपने इतिहास ग्रंथ में हिंदी-उर्दू पर टिप्पणी करने से बच नहीं पाते। उनका मानना है कि यदि शब्दावली की भिन्नता नहीं होती तो हिंदी उर्दू का साहित्य एक होता[29] वास्तव में शुक्ल जी को यहाँ यह समझना चाहिए कि शब्दावली की भिन्नता तो मैथिल और अवधी के साथ भी है, क्या इन दोनों का साहित्य एक नहीं है? हिंदी-उर्दू पर शुक्ल जी का यह कथन भी देखिये 'हम भोली-भाली जनता को इस हिन्दुस्तानी से सावधान करना अत्यंत आवश्यक समझते हैं। जो हिन्दुस्तानी इन लोगों के ध्यान में है वह थोड़ी छनी हुई उर्दू के सिवा और कुछ नहीं है।'[30] वास्तव में यह विचार इतिहास लेखन के क्रम में भी हावी थे। यह समस्या हिंदी-उर्दू के लगभग इतिहासकारों के साथ रही है।

संक्षेप में हम कहेंगे कि हमारा जो इतिहास-बोध विकसित हुआ उसकी ज़मीन नफरत की ज़मीन थी, जो ब्रिटिश-कालीन भारत में तैयार हुई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का यह एक गहरा घाव था जिसने हमारे समाज में, हमारी संस्कृति में, हमारी भाषा में भेद पैदा कर दिया। इसी अलगाववाद का शिकार हमारी आलोचना दृष्टि हुई और इसने हमारे इतिहास-बोध को भी प्रभावित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जो लोग दोनों संस्कृतियों को जोड़ कर देखते थे अथवा इन दोनों संस्कृतियों में फर्क नहीं समझते थे उन्हें नजरंदाज किया गया। नज़ीर भी इसका शिकार हुए हैं। नज़ीर हिंदी के कवि हैं इसमें कोई दो राय नहीं है ठीक उसी तरह जैसे जायसी, तुलसी और भारतेंदु

[28] Grierson, George A., The Modern Vernacular Literature Of Hindustan, Asiatic Society Calcutta, 1889, Preface(vii- viii)

[29] शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या- 58

[30] सिंह, ओमप्रकाश, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या- 72

हिंदी के कवि हैं। नज़ीर, भारतेंदु के अग्रज हैं अतः हिंदी कविता में आधुनिकता का प्रस्थान नज़ीर से माना जाना चाहिए। उनके यहाँ मार्क्स से भी पहले प्रगतिशील स्वर की झलक मिलती है। हिंदी साहित्य के इतिहास में यदि नज़ीर को नहीं समझा गया तो वास्तव में उस सांस्कृतिक संगम को, उस लगाव को नहीं समझा गया। वास्तव में यह नज़ीर की या उनके साहित्य की कमजोरी नहीं है। यह कमजोरी हमारे इतिहास लेखन की है, हमारी आलोचना दृष्टि की है। अतः यदि हिंदी साहित्य का एक मुकम्मल इतिहास लिखना है तो हमें हिंदी-उर्दू दोनों को साथ लेकर चलना होगा।

# द्वितीय अध्याय

# उर्दू साहित्य में नज़ीर अकबराबादी

**2.1 उर्दू साहित्य के इतिहास में नज़ीर अकबराबादी**

2.1.1 उर्दू तज़किरे और नज़ीर अकबराबादी

2.1.1.1 गुलशन-ए-बेख़ार

2.1.1.2 आब-ए-हयात

2.1.2 उर्दू तारीख और नज़ीर अकबराबादी

2.1.2.1 ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर : रामबाबू सक्सेना

2.1.2.2 ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर : टी. ग्राहम बेली

2.1.2.3 उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : सैयद एहतेशाम हुसैन

2.1.2.4 उर्दू भाषा और साहित्य का इतिहास : रघुपति सहाय ‘फ़िराक़’ गोरखपुरी

2.1.2.5 ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर : प्रो.मुहम्मद सादिक़

2.1.2.6 ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर : अली ज़वद ज़ैदी

**2.2 उर्दू आलोचना में नज़ीर अकबराबादी**

## द्वितीय अध्याय

# उर्दू साहित्य में नज़ीर अकबराबादी

हिंदी साहित्य के इतिहास और आलोचना में नज़ीर की स्थिति देखकर मन में जिज्ञासा हुई कि उर्दू साहित्य के इतिहास और आलोचना में नज़ीर की स्थिति देखी और समझी जाए चूंकि नज़ीर दोनों ही जगह हैं हिंदी में भी और उर्दू में भी। यह बात अलग है कि हिंदी वाले प्रायः नज़ीर को उर्दू का ही मानते आये हैं। इसके कारणों पर पिछले अध्याय में बात की जा चुकी है। बात यह भी है कि हिंदी में यदि नज़ीर की स्थिति को समझना है तो यह आवश्यक है कि उर्दू अदब में नज़ीर की स्थिति को समझा जाए। बगैर उर्दू आलोचना के नज़ीर पर बात संभव नहीं है। इसका एक कारण यह भी है कि नज़ीर जिस समय रचना कर रहे थे उस दौर में हिंदी-उर्दू दो अलग-अलग भाषा नहीं समझी जाती थी और न ही इस तरह का कोई विवाद था। यह विवाद तो 1857 के बाद मूलतः लिपि को लेकर शुरू हुआ और परिणति यह हुई कि अंग्रेजों ने हम पर 100 वर्ष और शासन किया। पिछले अध्याय में हम बात कर चुके हैं कि हिंदी-उर्दू के इस विवाद के पीछे अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

उर्दू अदब में नज़ीर की स्थिति को समझने के लिए मैंने अदब की तवारीखों और तज़किरों के अनूदित पाठ पढ़े जिनकी चर्चा आगे विस्तार से की जाएगी। इस चर्चा को शुरू करने से पूर्व मुझे लगता है कि उर्दू अदब की तवारीखों और तज़किरों के स्वरूप को संक्षेप में समझना हमारे लिए आवश्यक है।

उर्दू में साहित्येतिहास लेखन की परंपरा का आरंभ तज़किरों के रूप में होता है। तज़किरा जिसके लिए अंग्रेज़ी में 'anthology' और हिंदी में 'संकलन' शब्द का प्रयोग किया जाता है। मीर तक़ी 'मीर' ने 'नुक़त-उस-शुअरा' नाम से तज़किरा लिखा, नवाब मुस्तफ़ा खां 'शेफ्ता' ने 'गुलशन-ए-बेख़ार' नाम से तज़किरा लिखा और भी बहुत से लोगों ने लिखा। तज़किरों में मूलतः कवियों के

चयनित पदों का संकलन होता है तथा कवियों का संक्षिप्त परिचय भी रहता है। उर्दू में यह परंपरा फ़ारसी से आयी है। तज़किरा लेखन की शुरुआत भारत में ही फ़ारसी के रचनाकारों द्वारा 13वीं सदी के आस पास हुई थी।[31] 19वीं सदी के उत्तरार्ध में मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने 'आब-ए-हयात' नाम से तज़किरा लिखा जिसकी भाषा उर्दू थी। इनसे पहले मीर और शेफ्ता ने जो तज़किरा लिखा उसकी भाषा फ़ारसी ही थी। मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने अपने तज़किरे में कवियों के परिचय और पदों के साथ उनके लेखन पर टिप्पणी भी की। यहीं से उर्दू अदब में तनकीद (आलोचना) की शुरुआत मानी जाती है। इन तज़किरों में प्रायः लेखक के मित्र या समकालीन शायरों का ही ज़िक्र होता था। उदाहरण के लिए 'मयखाने' (1874) जिसके लेखक है मिर्ज़ा हुसैन-ए-मुदरर्सी। ये याज्द (ईरान) के रहने वाले थे। इन्होंने अपने तज़किरे में अपने याज्द के समकालीन रचनाकारों को ही स्थान दिया। ऐसे कई उदाहरण मिल जायेंगे। हुसैन मोंत्ताघी ने अपने शोध-पत्र "The Traditions of Persian "Tazkirah" Writing in the 18th & 19th Centuries and Some Special Hints*1" में विस्तार से इसकी चर्चा की है। उर्दू में तज़किरे की यही परंपरा बाद में तारीख या तवारीख़ के रूप में विकसित हुई। वास्तव में यह पाश्चात्य साहित्येतिहास लेखन की परंपरा का प्रभाव था। उर्दू अदब का वैज्ञानिक विवेचन इन्हीं तवारीखों में मिलता है। इनमें उर्दू साहित्य के इतिहास का व्यवस्थित रूप मिलता है। सन् 1901 में रामबाबू सक्सेना ने 'ए हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेचर' नाम से उर्दू साहित्य का इतिहास अंग्रेज़ी में लिखा। संभवतः इसे ही उर्दू साहित्य का पहला व्यवस्थित इतिहास माना जाता है। यह इतिहास ग्रन्थ बहुत व्यवस्थित और प्रामाणिक माना जाता है। इसके बाद टी. ग्राहम बैली ने सन् 1932 में अंग्रेज़ी में ही उर्दू साहित्य का इतिहास लिखा। उर्दू में 1920 के आस-

[31] (पुनरुधृत) "Of course, about this time, the first Tazkirahs of Persian poets were composed in Sind (India), in the early thirteen century (Pritchett, 2000)." Monttaghi-far, Hossein, The Traditions of Persian "Tazkirah" Writing in the 18th & 19th Centuries and Some Special Hints*1, Advanced in Information Sciences and Service Sciences Volume 2, Number 3, September 2010, Pg. 114

पास अब्दुल कादिर सरवरी ने ‘दस्तान-ए-तारिख-ए-अदब-ए-उर्दू’ नाम से उर्दू साहित्य का इतिहास लिखा। इसके बाद उर्दू साहित्य के इतिहास की एक लम्बी परंपरा मिलती है।

### 2.1 उर्दू साहित्य का इतिहास में नज़ीर अकबराबादी

अब तक के विवेचन से यह स्पष्ट है कि उर्दू साहित्य का इतिहास दो रूपों में लिखा गया है- एक तो तज़किरे के रूप में जो फ़ारसी आधारित पुरानी पद्धति है और दूसरा तारीख़-ए-अदब या तवारीख़ के रूप में, यह आधुनिक पद्धति है।

### 2.1.1 उर्दू तज़किरे और नज़ीर अकबराबादी

उर्दू अदब में तज़किरे की परंपरा का प्रारंभ प्रायः मीर से ही माना जाता है। अदब के प्रमुख तज़किरों में मीर तक़ी ‘मीर’ कृत ‘नुक़त-उस-शुअरा’ , नवाब मुस्तफा खां ‘शेफ्ता’ कृत ‘गुलशन-ए-बेख़ार’, मुहम्मद हुसैन ‘आज़ाद’ कृत ‘आब-ए-हयात’ और अल्ताफ़ हुसैन ‘हाली’ कृत ‘मुकद्दमा-ए-शेरो-शायरी’ का ही नाम लिया जाता है। इनमें से ‘नुक़त-उस-शुअरा’ और ‘गुलशन-ए-बेख़ार’ में तज़किरे की वही पुरानी पद्धति मिलती है। केवल शायरों का संक्षिप्त परिचय और उनकी कुछ रचनाएँ। इन दोनों की भाषा भी फ़ारसी ही हैं। गार्सा-द-तासी ने भी अपने साहित्येतिहास मीर के ‘नुक़त-उस-शुअरा’ का उल्लेख किया है। यहाँ उर्दू के आरंभिक तज़किरों में जहाँ-जहाँ नज़ीर का उल्लेख मिलता है उन पर विस्तार से चर्चा अपेक्षित है –

### 2.1.1.1 गुलशन-ए-बेख़ार (1834)

नवाब मुस्तफा खां 'शेफ़्ता' कृत इस तज़किरे का नाम उर्दू के शुरुआती तज़किरों में लिया जाता है और अपने समय के तज़किरों में इसका बहुत नाम था। इसमें नज़ीर के बारे में लिखते हुए वे कहते हैं –

> "नज़ीर ने मात्रा में बहुत ज़्यादा पर गुण में मूल्यहीन रचनाएँ लिखीं। इनकी कविताएँ आम जनता की ज़ुबान पर थी। लेकिन इसी आधार पर इन्हें कवियों के बीच स्थान नहीं दिया जाना चाहिए बल्कि उनकी कुछ चुनी हुई रचनाओं को इसके लिए ध्यान से देखा जाना चाहिए।"[32]

(गुलशन-ए-बेख़ार)

"शेफ़्ता अपने दौर के बड़े नक्काद थे। आवाम से उन्हें सरोकार नहीं था। नज़ीर को नज़रअंदाज़ करके उन्होंने अपना ही नुकसान किया।"[33]

### 2.1.1.2 आब-ए-हयात (1880)

मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' की यह कृति उर्दू तज़किरों की रवायत की महत्वपूर्ण कृति है। इसे उर्दू शायरी का पहला साहित्यिक इतिहास माना जाता है। इस किताब में आज़ाद ने शायरों के संक्षिप्त परिचय और उनकी कुछ रचनाओं के साथ-साथ उन रचनाओं के मूल्यांकन का प्रयास भी किया है। अतः उर्दू आलोचना की शुरुआत की दृष्टि से भी इनका नाम महत्वपूर्ण है। आब-ए-हयात में भी नज़ीर के संदर्भ में वे कहते हैं-

---

[32] (पुनरुधृत) हसन, मुहम्मद, नज़ीर अक़बराबादी, साहित्य अकादमी, पृष्ठ संख्या- 47

[33] कासमी, प्रो. अबुल कलम, मशरिकी शेर-ई-यात और उर्दू तनकीद की रवायत, पृष्ठ संख्या-171 (मूल-तन्कीद क्या है, अल अहमद सुरूर)

"कवि के कुछ उत्कृष्ट पदों पर उसकी महानता की घोषणा संगत नहीं है। कदाचित् यह दिग्भ्रमित भी कर सकता है। हालांकि नज़ीर की कुछ कविताएँ बाध्य करती हैं कि उनको मीर के समतुल्य देखा जाए। कवि की जीवनी प्रस्तुत करते हुए अगर कोई आलोचक नज़ीर की इन विशिष्ट रचनाओं को उद्धरित करता है तो यह अनायास चेष्टा इसके अलावा कोई विकल्प नहीं छोड़ती कि नज़ीर को मीर के बराबर स्थान दिया जाए।"[34]

(आब-ए-हयात)

इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण तज़किरों में 'मुकद्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी' (1893) का नाम लिया जाता है। अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' की यह किताब उर्दू अदब में तज़किरे की पुरानी रवायत से अलग है। इसमें उन्होंने अदब के समीक्षा सिद्धांतों की चर्चा की है। कविता के स्वरूप की बात तो की है किन्तु नज़ीर का उल्लेख इस किताब में कहीं नहीं मिलता है। ऐसा नहीं है कि हाली कविता के लिए जिन मूल्यों को वांछित मानते हैं वे नज़ीर के यहाँ अनुपस्थित है। 'नुकात-उस-शुअरा' में भी नज़ीर का उल्लेख नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त और बहुत से तज़किरे लिखे गये लेकिन उतने महत्वपूर्ण नहीं है। एक कुतुबद्दीन बत्तीन ने 'गुलिस्तान-ए-बेखिजां' नाम से तज़किरा लिखा, जो स्वयं नज़ीर के शिष्य थे। यह तज़किरा उपलब्ध नहीं हो पाया अतः अन्य किताबों में जो इसका ज़िक्र आया है उसकी ही चर्चा यहाँ की जाएगी। प्रो. अब्दुल गफूर शहबाज़ ने 'ज़िन्दगानी-ए-बेनज़ीर' में बताया है कि यह तज़किरा बात्तीन ने शेफ्ता के जवाब में लिखा था। शेफ्ता ने 'गुलशन-ए-बेख़ार' में नज़ीर को महत्व नहीं दिया और उन्हें बाज़ारू शायर कहा। उसके प्रतिरोध में बात्तीन ने 'गुलिस्तान-ए- बेखिजां' लिखा जिसमें नज़ीर

[34] (पुनरुधृत) हसन, मुहम्मद, नज़ीर अक़बराबादी, साहित्य अकादमी, पृष्ठ संख्या- 47

को उन्होंने सारी कमियों और सीमाओं से ऊपर प्रतिष्ठित किया। प्रो. शहबाज़ इसे एक अतिवाद के प्रतिरोध में दूसरा अतिवाद कहते हैं।

### 2.1.2 उर्दू तारीख और नज़ीर

उर्दू में साहित्येतिहास या अदबी तारीख़ की परंपरा की झलक मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' और हाली के तज़किरों में मिलती है किन्तु उन्हें मुकम्मल साहित्येतिहास नहीं कहा जा सकता। यद्यपि इन तज़किरों में साहित्यिक प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करने का प्रयास तो किया गया है किन्तु काल विभाजन का सर्वथा अभाव है। अदबी-तारीख़ के रूप में पहला ग्रन्थ रामबाबू सक्सेना का मिलता है जो सन् 1901 में राम नारायण लाल प्रकाशन, इलाहाबाद से छपा था। सन् 1900 में प्रो. अब्दुल गफ़ूर शाहबाज़ ने 'ज़िन्दगानी-ए-बेनज़ीर' लिखा जिसे नज़ीर की जीवनी कह सकते हैं। यहीं से नज़ीर पुनः जीवित हुए और 1900 के बाद के लगभग अदबी तारीख़ों (साहित्येतिहास) में नज़ीर का उल्लेख मिलता है। यहाँ उर्दू साहित्य के कुछ इतिहास-ग्रंथों पर विस्तार से चर्चा की जा रही है-

#### 2.1.2.1 ए हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेचर (1901) : रामबाबू सक्सेना

रामबाबू सक्सेना ने भी उर्दू अदब के इतिहास में नज़ीर पर बात की है। 'ए हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेचर' नामक अपनी किताब में सक्सेना जी ने उर्दू अदब के इतिहास को कुल 19 अध्यायों में बाँटा है। इन अध्यायों में 11वें अध्याय में नज़ीर की चर्चा की है। उन्होंने इस अध्याय का शीर्षक 'The Stragglers' नाम से दिया जिसका हिंदी पर्याय विपथगामी या घुमक्कड़ है। इस पूरे अध्याय में केवल दो कवियों को रखा गया है जिसमें से एक नज़ीर अक़बराबादी और दूसरे नासिर देहलवी (VI) हैं। रामबाबू सक्सेना ने बहुत सधे हुए ढंग से नज़ीर पर बात की है। उन्होंने नज़ीर के लिए कहा है –

"Nazir Akbarabadi is a class by himself and cannot be said to belong to any school or to a particular age."[35] वास्तव में नज़ीर अपने-आप में एक घराना हैं। संभवतः यह बात उर्दू के किसी अन्य कवि के लिए नहीं कही गयी होगी। दरअसल उर्दू में दरबारी संरक्षण से अलग रहने वाले साहित्यकार बहुत कम हैं जिनमें से नज़ीर एक हैं। इस किताब में आलोचक नज़ीर की कविताओं पर बाज़ारूपन का जो आरोप लगा उसे खारिज करते हुए बताते हैं कि नज़ीर के यहाँ भाषा और विषयवस्तु की साधारणता उनकी कमजोरी नहीं है बल्कि सबसे बड़ी ताक़त है। नज़ीर की कविताओं में जो जीवंतता दिखाई देती है वह इसलिए कि उन्होंने साधारण जन-जीवन के उन क्षणों को सहृदयता पूर्वक पकड़ा है। वे नज़ीर को दार्शनिक के रूप में नहीं देखते हैं जो उत्सव के चित्रण में और लोगों के आनंद में कोई गहन दर्शन की बात करता है। वे नैतिकता और आदर्श के आधार पर किसी गलती के रूप में नहीं देखते हैं। त्यौहारों और मेलों के वर्णन में नज़ीर के पद मनोरम, विशद और बहुत स्वाभाविक हैं। इनके पदों में वह स्वतः-स्फूर्त भाव दिखता है जिसकी बात वर्ड्सवर्थ करते हैं।

वे लिखते हैं नज़ीर उपेक्षित, साधारण पर अकल्पित और असंभव सौंदर्य को शब्द देने वाले कवि रहे हैं। रामबाबू सक्सेना ने उन्हें सच्चे अर्थों में एक नए युग का कवि माना है। वे नज़ीर को आज़ाद हाली और सरूर का अग्रज मानते हैं। नज़ीर आम आदमी के दुःख-सुख के कवि थे। वे उनका दुःख-सुख जीते थे।

रामबाबू सक्सेना ने उर्दू अदब को ग़ज़ल की एक-छत्रता और आडम्बरपूर्ण क़सीदों से मुक्त कराने का श्रेय नज़ीर को दिया है। इनके अनुसार नज़ीर ही वह कवि हैं जो घिसे-पिटे और साधारण कहे जाने वाले विषयवस्तु को साहित्य में स्थान देते हैं। रामबाबू बताते हैं कि नज़ीर, भाषा में इंशा, सौदा और अनीस से कहीं भी पीछे नहीं हैं किन्तु मानव-जीवन के ज्ञान में नज़ीर इन सब से कहीं आगे

[35] Saksena. Ram Babu, A History of Urdu Literature, Cosmo Publication, India, 2002, Page-140

हैं। उर्दू अदब में मिज़ाजी तौर पर नज़ीर की तुलना इंशा से की जाती है किन्तु इंशा के मिजाज़ में एक प्रकार के दरबारीपन की झलक मिलती है जो नज़ीर के यहाँ नहीं है। इंशा की रचनाएँ एक तरह के ख़ुशामद और मसख़रेपन से भरी हुई हैं। जबकि नज़ीर इन सब से पूर्णतः मुक्त हैं। नज़ीर यथार्थ के कवि हैं, वे दरबारी शिष्टता से विद्रोह के कवि हैं।

नज़ीर पर लिखे उस पूरे अध्याय को पढ़कर लगता है कि नज़ीर के बारे में रामबाबू सक्सेना के विचारों में एक प्रकार का विरोधाभास है। एक जगह वे नज़ीर की स्वच्छंदता और स्पष्टता की तारीफ करते हैं तो दूसरी जगह वे नज़ीर को नैतिकता की कसौटी पर कसते हुए कहते हैं कि यदि उनके भ्रष्ट और भद्दे पक्ष को हटा दिया जाए तो नज़ीर की गिनती दुनिया के सर्वश्रेष्ठ सदाचारियों में की जा सकती है – "If the debased portion of his poem is discarded he can rank with the greatest moralists in the world"[36] एक तरफ वे नज़ीर के यहाँ मौजूद भाषा की ग्राम्यता की तारीफ़ करते हैं दूसरी तरफ वे इंशा को अरबी-फारसी की शुद्धता बनाये रखने की तारीफ करते हैं।

### 2.1.2.2 ए हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेचर (1932) : टी. ग्राहम बेली

रामबाबू सक्सेना के बाद 1932 में टी. ग्राहम बेली ने यह इतिहास ग्रन्थ तैयार किया। बेली का जन्म अंबाला (भारत) में ही हुआ था। ये आयरिश ज्योतिष थे। जो बाद में लंदन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो गए। उर्दू साहित्य के इतिहासकारों में इनका नाम महत्वपूर्ण है। इन्होंने अपनी किताब 'ए हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेचर' में उर्दू साहित्य के इतिहास को आठ भागों में बांटा है। नज़ीर का उल्लेख इन्होंने तीसरे अध्याय – 'The First Century of Urdu Poetry in Delhi' में किया है। नज़ीर पर बात करते हुए इन्होंने बताया कि नज़ीर पर बहुत कम विचार किया गया है। वे

[36] Saksena. Ram Babu, A History of Urdu Literature, Cosmo Publication, India, 2002, Page-141

लिखते हैं – VALI MUHAMMAD NAZEER(1740-1830) was thought little of during his lifetime, and for many years after his death, but thanks to a change in critical taste is now given a place in the first six or seven Urdu poets, ranking alongside of Sauda.[37] बेली नज़ीर का महत्व स्वीकार करते हैं। उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि उर्दू में नयी आलोचना के दौर में नज़ीर को उर्दू के शीर्ष सात कवियों में स्थान दिया गया। विषय के चुनाव के आधार पर बेली ने नज़ीर की तुलना कुली क़ुतुबशाह से की है। कुली क़ुतुबशाह आम जन-जीवन के विषयों पर कविता लिखते थे। फल-फूल, सब्जियां, पशु-पक्षियों पर भी उनकी रचनाएँ मिलती है। प्रकृति वर्णन, हिन्दू संस्कृति वर्णन आदि के आधार पर वे नज़ीर की तुलना क़ुतुबशाह से करते हुए नज़ीर को कुतुबशाह से निम्न कोटि का कवि बताते हैं।[38] नज़ीर की कविता के मौज़ू भले उनसे मिलते हों लेकिन नज़ीर की कविता का तरीका बिलकुल अलग है। क़ुतुबशाह की पारंपरिक शैली नज़ीर के पास नहीं थी। नज़ीर जन जीवन के बीच रहकर उनका चित्रांकन करते हैं।

### 2.1.2.3 उर्दू साहित्य का इतिहास (1954) : प्रो. सैयद एहतेशाम हुसैन

प्रो. एहतेशाम हुसैन की यह किताब पहली बार 1954 में अंजुमने-तरक़्क़ीए-उर्दू (हिन्द), अलीगढ़ से प्रकाशित हुई। बाद में 1972 में राजकमल प्रकाशन से उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास नाम से पुनः प्रकाशित हुई। उर्दू साहित्य के इतिहास के संदर्भ में देवनागरी में लिखी गयी संभवतः यह पहली किताब है तथा उर्दू साहित्य के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण किताबों में से

[37] Bailey, T. Grahame, A History of Urdu Literature, Oxford University Press, London, 1932, Page-58

[38] “Only later Urdu poets who compare with him in this respect are Sauda and Nazir; they are inferior to him in description of nature, while he is superior to Nazir in his sympathetic account of Hindu life, which Sauda did not touch”, A History of Urdu Literature, T. Grahame Bailey, Oxford University Press, London, 1932, Page-20

एक है। इन्होंने उर्दू साहित्य के इतिहास को 14 भागों में प्रस्तुत किया। जिसमें छठा अध्याय नज़ीर अकबराबादी को समर्पित है। 1940-50 के दौर के आलोचकों में इनका नाम बहुत महत्वपूर्ण है। प्रो. हुसैन नज़ीर की पृथक परंपरा की पहचान की जिसका संबंध न लखनऊ दरबार से था न दिल्ली और न अन्य किसी भी दरबार से। वे मानते हैं कि नज़ीर ने अपनी अलग परंपरा कायम की, जो जीवन को समझने के लिए किसी दर्शन का सहारा नहीं लेती। नज़ीर जीवन को समझने के लिए उसमें डूब जाते हैं।

प्रो. एहतेशाम हुसैन ने नज़ीर की काव्य-चेतना और जनसामान्य के प्रति उनकी कविता की प्रतिबद्धता को समझा है। उन्होंने नज़ीर को उर्दू की सामंतवादी सभ्यता और ईरानी प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं माना -" यह कहना ठीक नहीं होगा कि 'नज़ीर' के यहाँ उर्दू-काव्य की वह परंपराएँ बिलकुल नहीं है, जिन्हें सामंतवादी सभ्यता और ईरानी प्रभावों ने जन्म दिया था और न यही कहना ठीक होगा कि आधुनिक युग की वास्तविकता और राष्ट्रीय चेतना का उद्भव नज़ीर की काव्य-रचना में देखा जा सकता है, क्योंकि ये दोनों बातें संभव नहीं थीं, परन्तु उनकी कविता में जो सच्चाई, जो देश-भक्ति, साधारण जन-जीवन का जो ज्ञान, मानव का जो प्रेम, जो सहृदयता और सहजता मिलती है, वह इससे पूर्व किसी कवि के यहाँ नहीं मिलती थी।"[39] प्रो. एहतेशाम हुसैन ने नज़ीर को एक श्रेष्ठ कवि के रूप में स्वीकारा है। उनके शब्दों में "आधुनिक दृष्टि से कविता और जीवन में जिस संबंध की खोज की जा रही है, उसके सुन्दर उदाहरण नज़ीर के यहाँ मिलते हैं और वह परंपरा दिव्य होकर पथ-प्रदर्शन करती है, जिस पर चले बिना साहित्य एक छोटे से क्षेत्र में सीमित होकर रह जाता है।"[40] वास्तव में नज़ीर की काव्य परंपरा के महत्व इस दृष्टि से भी है कि वे साहित्य के फलक को विस्तृत करने का काम करते हैं।

---

[39] हुसैन, सैयद एहतेशाम, उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-99.

[40] वही, पृष्ठ संख्या-103.

### 2.1.2.4 उर्दू भाषा और साहित्य का इतिहास (1962) : रघुपति सहाय 'फिराक़' गोरखपुरी

नज़ीर अकबराबादी पर बात करते हुए फिराक़ गोरखपुरी का नाम इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि फिराक़ उर्दू के उन आरंभिक आलोचकों में है जिन्होंने नज़ीर का उचित मूल्यांकन कर उन्हें उर्दू आलोचना के केंद्र में लाने का प्रयास किया। इसके साथ ही फिराक़ ने हिंदी के सुधीजनों को भी नज़ीर की ओर आकर्षित करने का काम किया। आरंभिक उर्दू आलोचकों द्वारा नज़ीर की उपेक्षा का कारण वे नज़ीर की विस्तृत काव्य-चेतना को मानते हैं। वे लिखते हैं "नज़ीर की चेतना अपने समय से बहुत आगे बढ़ी हुई थी, जिसे उनके समकालीनों ने बहुत पीछे की चीज समझा और उसको कोई महत्व नहीं दिया।"[41] वास्तव में नज़ीर की चेतना दरबारी परंपरा से इतर जन-कवि की चेतना थी। फिराक़ ने लिखा "वे (नज़ीर) प्रेम की बात करेंगे तो भी उसमें राजकुमारों और राजकुमारियों के विरहाग्नि से जलने का वर्णन न होगा बल्कि साधारण जन का तूफानी प्रेम होगा, भक्ति की बात करेंगे तो भी उस साधारण जन की भावना का चित्रण करेंगे जो कृष्ण और मुहम्मद दोनों के आगे नतमस्तक हो जाता है.."[42] फिराक़ स्वयं मानते थे कि जीवन का काव्यात्मक और कलात्मक अनुभव हासिल करना और दूसरों तक इस अनुभव को पहुंचाना साहित्य का एकमात्र मक़सद है। नज़ीर की कविताओं में फिराक़ को इसकी झलक मिली। फिराक़ नज़ीर को रूपकों का कवि बताते हैं। वे बताते हैं कि उर्दू में रूपकों का प्रयोग जितना नज़ीर ने किया उतना शायद ही किसी अन्य कवि ने किया होगा।

### 2.1.2.5 ए हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेचर (1964) : प्रो. मुहम्मद सादिक़

उर्दू के महत्वपूर्ण इतिहासकार और आलोचक प्रो. मुहम्मद सादिक़ ने उर्दू साहित्य के आरंभिक आलोचकों द्वारा नज़ीर की उपेक्षा का कारण वस्तुतः उनका पारंपरिक न होना ही माना। वे लिखते हैं

---

[41] गोरखपुरी, रघुपति सहाय 'फिराक़', उर्दू भाषा और साहित्य का इतिहास, उ.प्र. हिंदी संस्थान, पृष्ठ संख्या-49.

[42] वही, पृष्ठ संख्या - 49

“NAZIR AKBARABADI (Vali Muhammad Nazir) was given the cold shoulder by the earlier critics for being an eccentric who did not fit into the scheme of traditional poetry”[43]। प्रो. सादिक़ ने अपने इतिहास ग्रंथ का एक पूरा अध्याय नज़ीर को समर्पित किया है जिसमें उन्होंने नज़ीर की महत्ता और साथ-साथ उनकी कमियों पर भी बात की है। प्रो. सादिक़ नज़ीर के फक्कड़पन की तारीफ़ करते हैं और उनकी तुलना बर्न्स और विलो से करते हैं। बर्न्स(1759) और विलों(1431) बोहेमियन  मिजाज़ के यूरोपीय कवि हैं। नज़ीर का भी मिजाज़ वैसा ही था। प्रो. सादिक़ ने नज़ीर की कविताओं का गहरा अध्ययन किया था। वे कहते हैं कि नज़ीर मूलतः जन-सामान्य के कवि हैं, जीवन की गंभीरता के लिए उनकी कलम नहीं चलती। उनकी कलम साधारण जीवन प्रसंगों की तस्वीर खींचती है। वास्तव में प्रो. सादिक़ नज़ीर की चित्रात्मक वर्णन शैली के कायल थे। वे नज़ीर की कविताओं के बारे में कहते हैं कि नज़ीर की कविता बंद कमरे अथवा दरबार की कविता नहीं है। वे उन्मुक्त अनुभव के कवि हैं। प्रो. सादिक़ नज़ीर की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनके इन्द्रिय बोध को मानते हैं। वास्तव में नज़ीर का इन्द्रिय-बोध इतना तीव्र है कि उनकी कविताओं में चित्रात्मकता हमेशा गतिमान रहती है। उनकी नज़्में जैसे एक वीडियो दिखाते चलती हैं चाहे बरसात की बहारें हो चाहे होली-दिवाली हो, ईद हो, मुफ्लिसी हो ऐसी तमाम नज्में देखी जा सकती हैं जिनमें स्थिरता का भाव नहीं मिलेगा, उनमें एक प्रवाह निरंतर मौजूद है। प्रो. सादिक़ ने नज़ीर की तीव्र संवेदना और प्रखर स्मृति शक्ति की प्रशंसा भी की। साथ ही इसे वे नज़ीर की असफलता का कारण भी मानते हैं। दरअसल नज़ीर की कविता में मौजूद वर्णनात्मक प्रवाह का मूल कारण यही है। वे छोटी-छोटी चीजों को पकड़ते हैं और उन्हें कविता में रखते हैं। उदाहरण के लिए कबूतरबाज़ी में ऐसे-ऐसे दाव-पेंच का वर्णन मिलता है कि आज के अच्छे-अच्छे कबूतरबाज़ भी चौंक जाएँ किन्तु नज़ीर की यह क्षमता कहीं-कहीं उनके कवित्व में बाधा उत्पन्न करती है। वे लिखते

[43] Sadiq, Prof. Muhammad, A History of Urdu Literature, Oxford University Press, Delhi, 1995, Page-154

हैं- “Nazir’s quick observation and his retentive memory were often a drawback and are responsible for some of his failures.”[44] ‘बरसात का तमाशा’ की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि वर्षा के वर्णन में नज़ीर कहीं-कहीं ब्यौरा देने लगते हैं। इसके अतिरिक्त प्रो. सादिक़ नज़ीर को सहानुभूतिक-यथार्थवाद, विशद-अवलोकन क्षमता और विपुल शब्द भण्डार का कवि कहते हैं।

जो लोग नज़ीर की कविताओं पर अश्लीलता का आरोप लगाते हैं उन पर टिप्पणी करते हुए प्रो. सादिक़ कहते हैं कि नज़ीर जीवन के कवि हैं। आगरे में रहने वाले व्यक्ति के जीवन के तमाम पहलू नज़ीर की कविता में आए हैं। उनके यहाँ कुछ भी छिपा नहीं है। बचपन की मोहकता, जवानी का छिछोरापन और बुढ़ापे का फूहड़पन सब-कुछ का विवरण उनके यहाँ मौजूद है और यह मज़ाकिया ढंग से या हँसने के लिए नहीं पूरी गंभीरता के साथ मौजूद है। मनुष्य अपने जीवन के किसी हिस्से में फूहड़ भी होता है। यह फूहड़ता वास्तव में किसी व्यक्ति को साधारण मनुष्य बनाती है। नज़ीर ने अपनी कविता में किसी प्रकार का बंधन नहीं स्वीकार किया है। वे समाज की फूहड़ता और नग्नता को भी पूरी स्वच्छंदता से अभिव्यक्त करते हैं। काव्य-सृजन की यही स्वच्छंदता उन्हें यथार्थवादी बना देती है।

### 2.1.2.6 ए हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेचर (1993) : अली ज़वद ज़ैदी

अली ज़वद ज़ैदी, का नाम उर्दू जगत में अनभिज्ञ नहीं है। अदब के बड़े कवि और अच्छे शोधार्थी के रूप में ये उर्दू दुनिया में अपनी पहचान रखते हैं। ज़ैदी जी ने भी उर्दू साहित्य का इतिहास लिखा जिसका प्रकाशन सन् 1993 में साहित्य अकादमी ने किया। ज़ैदी जी ने अपनी इस किताब में विस्तार से नज़ीर पर बात की है। प्रो. मुहम्मद सादिक़ की तरह इन्होंने भी नज़ीर को पूरा एक अध्याय

---

[44] Sadiq, Prof. Muhammad, A History of Urdu Literature, Oxford University Press, Delhi, 1995, Page-162

समर्पित किया है। इन्होंने नज़ीर को युग प्रवर्तक कवि माना है। उर्दू कविता के पारंपरिक विकास के बीच उर्दू में लोक परंपरा को जीवित करने का श्रेय ये नज़ीर को देते हैं। ज़ैदी जी ने नज़ीर को कबीर, सूर और मीरा की परंपरा का कवि माना है जो उनके कैनवास को और बड़ा करता है।[45] नज़ीर की उपेक्षा का दोष वे फ़ारसी की पारंपरिक समीक्षा पद्धति का स्तवन करने वाले आलोचकों को देते हुए उन्होंने लिखा- "Persian-Oriented critics never cared to take adequate note of them.[46]

ज़ैदी जी ने नज़ीर की पहचान अमीर ख़ुसरो की परंपरा को प्रवाहमान रखने वाले कवि के रूप में की। नज़ीर की कविता के बारे में वे लिखते हैं – "Nazir sings of his sorrows and joys, hopes and aspirations, struggles and sufferings, success and failures, familiar surroundings and popular pastimes with intimate universality and invests his simple, short couplets with a homely virility, colours and imagination."[47] नज़ीर की कविता पर ज़ैदी जी की यह टिप्पणी बहुत संतुलित है। वास्तव में नज़ीर की रचनाओं में हमें ये सारी चीजें सहज रूप में मिलेंगी। ज़ैदी जी ने बताया है कि नज़ीर का शब्द-भंडार बहुत विस्तृत और विविध है। उन्होंने सहज कविता की नींव रखी और साथ ही रहस्यवाद की उच्चभूमि का भी ध्यान रखा। नज़ीर लोकप्रिय कवि जरूर थे किन्तु उनकी कविता में वह हल्का-पन नहीं रहा। उन्होंने बहुत ज़िम्मेदारी से अपनी कलम चलाई। उनकी कविता साधारण जन-जीवन

---

[45] "Nazir Akbarabadi represents a totally defferent tradition. It is the tradition of Kabir, Surdas and Mira Bai, but he spreads his canvas wider.", A History of Urdu Literature, Ali Jawad Zaidi, Sahitya Akademi, New Delhi, 2006, Page-143

[46] Zaidi, Ali Jawad A History of Urdu Literature, Sahitya Akademi, New Delhi, 2006, Page-143

[47] वही, Page-144

के सुख-दुःख की कविता है, उनका लेखन मनुष्यता की एकता और समानता के लिए है। नज़ीर ने लिखा है –

'झगड़ा न करे मजहबों मिल्लत का कोई यां

जिस राह में जो आन पड़े खुश रहे हर आं।।'[48]

नज़ीर इसी विचार के कवि थे। वे मथुरा और आगरा की संस्कृति को मेलों और उर्स पर लिखी अपनी कविता में अभिव्यक्त करते हैं। उनकी बहुत सी कविताएँ आज भी आगरा और मथुरा के लोक जीवन में जीवित है।

नज़ीर की सीमाओं पर संकेत करते हुए ज़ैदी जी ने लिखा "It would be wrong to presume that his compositions are free from feudal traits but in literature he heralds the coming of local realism and conscious nationalism."[49] वास्तव में ज़ैदी जी ने नज़ीर को समग्रता में समझने का प्रयास किया है।

## 2.2 उर्दू आलोचना में नज़ीर अकबराबादी

उर्दू आलोचना का ध्यान नज़ीर की ओर 20 वीं शताब्दी के चौथे-पाँचवे दशक में गया जब उर्दू आलोचना में तरक्क़ी पसंद तहरीक का विकास हुआ। एहतेशाम हुसैन, कलीमुद्दीन अहमद और मजनूँ सुरूर ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक में नज़ीर को जगह दी। 1942 में प्रकाशित अपनी किताब 'अदब और ज़िन्दगी' में मजनू गोरखपुरी लिखते हैं "उन्होंने उस काव्य धारा की शुरुआत की, जिसमें पहली बार कविता मातृभूमि की उपज लगी, जिससे लोगों ने पहली बार तादात्म्य और प्रेरणा का

[48] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-180

[49] Zaidi, Ali Jawad A History of Urdu Literature, Sahitya Akademi, New Delhi, 2006, Page-144

अनुभव किया"[50] वास्तव में नज़ीर की कविता जनतंत्र की कविता है। साधारण जनता की आवाज है। तभी तो किसी ककड़ी बेचने वाले के लिए वे लिखते हैं-

'क्या ख़ूब नर्मो नाजुक, इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें ख़ास काफ़िर, इस्कन्दरे की ककड़ी।
क्या प्यारी-प्यारी मीठी और पतली पतलियां हैं।
गन्ने की पोरियां हैं, रेशम की तकलियां हैं।
फ़रहाद की निगाहें, शीरीं की हसलियां हैं।
मजनूं की सर्द आहें, लैला की उंगलियां हैं।...'[51]

या किसी तरबूज वाले के लिए के लिए लिखते हैं-

'क्यू न हो सब्ज़ जुमुर्रद के बराबर तरबूज़।
करता है ख़ुश्क कलेजे के तई तर तरबूज़।
दिल की गर्मी को निकाले है यह अक्सर तरबूज़।
जिस तरफ़ देखिए बेहतर से है बेहतर तरबूज़।
अब तो बाजार में बिकते हैं सरासर तरबूज़॥'[52]

ऐसे ही संतरे, खरबूजे, नारंगी, जलेबी, पान आदि पर नज़ीर ने रचना की, फेरीवालों के लिए उन्होंने लिखा ताकि वे अपना समान बेच सकें। उर्दू अदब के मूर्धन्य आलोचक प्रो. एहतेशाम हुसैन अपनी किताब 'तनक़ीदी जायजे' में पाठकों का ध्यान नज़ीर की उन रचनाओं की ओर आकृष्ट करते हैं जिसमें नज़ीर अपने समय की आर्थिक स्थिति को प्रस्तुत करते हैं। नादिर शाह, अहमदशाह अब्दाली

---

[50] हसन, मुहम्मद, नज़ीर अकबराबादी(अनु.), साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1987 पृष्ठ संख्या-43
[51] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या- 536
[52] वही, पृष्ठ संख्या- 137

के बाद मराठों और जाटों के आक्रमण और लूट ने दिल्ली और आगरे की शासन व्यवस्था को पूरी तरह बर्बाद कर दिया था। क्या 'कारखान जात' और क्या छोटे-मोटे सौदागर सब कौड़ी के मोहताज हो गये हैं। छत्तीसों तरह के रोजगार बंद हैं-

'मारें है हाथ हाथ पे सब यां के दस्तकार।
और जितने पेशावर हैं सो रोते हैं ज़ार ज़ार।
कूटे है तन लोहार तो पीटे है सर सुनार।
कुछ एक दो के काम का रोना नहीं है यार।
छत्तीस पेशे बालों के हैं कारोबार बंद॥'[53]

xxxx

'जितने हैं आज आगरे में कारख़ान जात।
सब पर पड़ी है आन के रोज़ी की मुश्किलात।'[54]

'उर्दू शायरी पर एक नज़र' में कलीमुद्दीन अहमद ने नज़ीर की काव्य-चेतना, भाव-बोध और अवलोकन क्षमता पर प्रकाश डाला। उर्दू आलोचना में नज़ीर की उपेक्षा का कारण बताते हुए लिखते हैं- "नज़ीर की पहचान विशेष रूप से उर्दू साहित्य में उनकी आज़ादख्याली और विद्रोही स्वर का प्रमाण है। जब ग़ज़ल, काव्य-रचना की सर्वकालिक अभिव्यक्ति की मान्य पद्धति थी, नज़ीर ने इसमें लेखन को सीमित करने से इनकार कर दिया। नज़ीर व्यक्ति और लेखकीय स्वतंत्रता के अनमोल मोती थे। हालांकि इन्होंने भी ग़ज़लें लिखीं लेकिन ग़ज़ल को काव्य-रचना की सर्वोत्कृष्ट विधा मानने से इनकार किया था"[55] नज़ीर से पहले उर्दू में ग़ज़ल की परंपरा थी, क़सीदे की परंपरा थी किन्तु नज़ीर ने नज़्म लिखना

---

[53] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-486
[54] वही, पृष्ठ संख्या-490
[55] हसन, मोहम्मद, नज़ीर अकबराबादी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1987, पृष्ठ संख्या-46

शुरू किया। वास्तव में नज़ीर परंपरा-धर्मी कवि नहीं थे और इसलिए उनके समकालीन आलोचकों द्वारा अर्जित या स्वीकृत मूल्यांकन प्रतिमानों से उन्हें उपेक्षा ही मिली किन्तु नए दौर के आलोचकों ने उन्हें समझा। प्रो. मोहम्मद हसन नज़ीर की कविता पर लिखतें हैं "इन कविताओं में आम-आदमी की ज़िन्दगी के हर्ष विषाद के अनेक अवसरों के अनेक चित्र हैं और अनेक लोकप्रिय छवियाँ विन्यस्त हैं।"[56] यही कारण है कि नज़ीर को जन-कवि की संज्ञा दी गयी है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वली मुहम्मद 'नज़ीर' को प्रायः लोग उर्दू का शाइर मानते आये हैं किन्तु उर्दू के ही आरंभिक तनकीदगारों, या तज़किरानवीस कहना ज्यादा उचित होगा, ने नज़ीर को उर्दू का क्या, शाइर ही स्वीकार नहीं किया। मुहम्मद सादिक़ बताते हैं 'नज़ीर, पुरानी पीढ़ी के आलोचकों द्वारा उपेक्षित दृष्टि से देखे गये। उनके अनुसार नज़ीर एक सनकी आदमी थे'[57] उनकी नज़र में नज़ीर एक शाइर या कवि की गरिमा का निर्वहन नहीं करते। उनकी रचनाएँ आम जनता के ज़बान पर मौजूद हैं[58] अतः वे एक बाज़ारू शाइर या कवि हैं। वे प्रतिष्ठित कवि नहीं हैं चूंकि उनकी कविताएँ आम-ज़बान की भाषा में हैं, बाज़ार की भाषा में हैं। 'गुलशन-ए-बेख़ार' (1834 ई.) के लेखक नवाब मुस्तफा खां 'शेफ्ता' ने नज़ीर को अपने तज़किरे में इसलिए जगह नहीं दी कि उनकी भाषा अदब(साहित्य) की भाषा न होकर बाज़ार की भाषा थी। उनकी कविता के मौज़ू साधारण जन-जीवन से जुड़े हुए हैं तथाकथित अदब के मौज़ू नहीं हैं ऐसे में मीर और ग़ालिब के समकक्ष नज़ीर को रखना शेफ्ता को मंज़ूर न था। उर्दू के पहले साहित्यिक इतिहासकार माने जाने वाले मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने भी 'आब-ए-हयात'(1880 ई.) में नज़ीर पर कुछ नहीं लिखा और न हाली ने ही कुछ ध्यान दिया।

[56] हसन, मोहम्मद, नज़ीर अकबराबादी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1987, पृष्ठ संख्या-49

[57] वही, पृष्ठ संख्या-36

[58] 'his verses were on the tongues of the people of the market' Gulshan-e-Bekhar, A Glimpses of Mughal Society and Culture(से पुनरुधृत),1992, Ishrat Haque, Page- 45

वस्तुतः नज़ीर को उनके समकालीन साहित्यकारों ने ही नज़र-अंदाज किया। नज़ीर अपने समय की प्रचलित काव्य परंपरा से इतर काव्य रचना कर रहे थे। इनके मौज़ुआत तो अलग थे ही इन्होंने कविता की रवायत भी बदल दी। दरअसल उस दौर का उर्दू अदब दरबार में पल रहा था अतः अदब की भाषा, अदब के मौज़ू सब चीजें शाही थी और नज़ीर दरबार से कोसों दूर आगरा के गली कूचों में नए दौर का अदब तैयार कर रहे थे जिसमें साधारण जन-जीवन था। नज़ीर की कविता के मौज़ू 'रोटी' है, 'मुफ्लिसी' है, 'आटे दाल का भाव' है जिनसे साधारण व्यक्ति टकराता है। जो आम जनता की परेशानी की जड़ है। नज़ीर का अदबी-मौज़ू शाही नहीं था यही कारण है कि उस दौर के तज़किरों में नज़ीर को स्थान नहीं दिया गया। रोटी दरबारी कविता का मौज़ू कभी नहीं हो सकती। नज़ीर आम जनता के बीच के कवि थे अतः 'रोटी' और 'आटे दाल का भाव' का महत्व वे जानते थे। शेफ्ता स्वयं नवाब थे उनकी कविता महलों और दरबारों के भीतर ही सजती-संवरती थी। उनके साहित्य में कलात्मकता का महत्व अधिक था। शाही खानदानों में रोटी और आटे दाल के भाव की फ़िक्र किसे ही होती। आश्चर्य की बात यह है कि मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' का ध्यान भी नज़ीर पर नहीं जाता जिन्हें उर्दू में नयी आलोचना का सूत्रपात करने का श्रेय दिया जाता है। उससे भी ज्यादा सोचने वाली बात यह है कि हाली का ध्यान भी नज़ीर पर नहीं गया। हाली ने 'मुकद्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी' में अभिव्यक्ति की सादगी और कविता के संवादात्मक होने की बात कही है। इन सिद्धांतों का आधार संभवतः नज़ीर का साहित्य ही रहा होगा। वास्तव में नज़ीर की कविताएँ हाली के इन काव्य-समीक्षा के सिद्धांतों पर बिलकुल खरी उतरती हैं।

तनकीद और तवारीख़ों(इतिहास ग्रंथों) ने नज़ीर को समझने में वर्षों लगा दिए। अदब के तरक्क़ी पसंद दौर ने नज़ीर को महत्व दिया। संभवतः फिराक़ गोरखपुरी ने ठीक ही लिखा है 'नज़ीर अक़बराबादी उर्दू के ऐसे निराले कवि हैं जो वास्तव में अपने समय के बहुत पहले पैदा हो गये...।'[59]

[59] गोरखपुरी, रघुपति सहाय 'फिराक़', उर्दू भाषा और साहित्य, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृष्ठ संख्या- 46

वास्तव में नज़ीर का महत्व बाद के उर्दू आलोचकों ने समझा। बाद के उर्दू अदब के इतिहासकारों में पहली बार रामबाबू सक्सेना ने अपने इतिहास-ग्रन्थ में नज़ीर पर विस्तार से बात की, इनके बाद टी. ग्राहम बेली, एहतेशाम हुसैन, फिराक़ गोरखपुरी, मुहम्मद सादिक़, आदि इतिहासकारों ने अपने उर्दू साहित्य के इतिहास में नज़ीर को एक पूरा युग समर्पित किया। उनपर विस्तृत चर्चा की और उन्हें अदब के शीर्षतम् कवियों में स्थान दिया। आज नज़ीर अक़बराबादी, उर्दू अदब की तवारीख़ में एक युग का नाम है। इस बात से अंदाजा लगाया जा सकता है कि नज़ीर कितने बड़े कद के कवि हैं। प्रगतिवादी आलोचना के विकास के साथ एहतेशाम हुसैन, मजनूँ गोरखपुरी, कलीमुद्दीन अहमद आदि नये युग के आलोचकों ने भी नज़ीर को समझा। इन्होंने नज़ीर को ख़ुसरो और कबीर की परंपरा में देखा।

आज भी अदब के परंपरावादी आलोचक नज़ीर को विशेष महत्व नहीं देते। वे नज़ीर का मूल्यांकन उनकी गज़लों के आधार पर करते हैं, चूंकि उनकी नज़र में ग़ज़ल ही अदब की प्रमुख विधा है। वास्तव में ग़ज़लों की रचना में नज़ीर थोड़े पारंपरिक हो गये हैं। उनकी ग़ज़लों में रीतिकालीन भाव-बोध कुछ हावी है। उदाहरण के लिए –

> 'नज़र पड़ा एक बुत परीवश निराली सजधज नई अदा का।
> जो उम्र देखी दस बरस की यह कहर आफ़त ग़ज़ब ख़ुदा का।।'[60]

नज़ीर की इन पंक्तियों में रीति काल का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। दस वर्ष की बच्ची का ऐसा चित्रण रीतिकाल में ही हो सकता है। वास्तव में इन पंक्तियों में मीर का प्रभाव भी देखा जा सकता है। प्रो. शहबाज ने बताया है कि मीर जब आगरा आये थे तब नज़ीर ने उन्हें ये ग़ज़ल सुनायी थी जिस पर मीर ने उन्हें शाबाशी भी दी थी। बात यह है कि नज़ीर की नज़्में उनकी ग़ज़लों से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। न केवल 'आदमीनामा' और 'बंजारानामा' बल्कि 'रोटीनामा' 'आटे दाल का भाव', 'पेट की

[60] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर, नज़ीर ग्रंथावली, उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-xxi

फिलासफी', 'रूपये की फिलासफी', 'मुफ्लिसी' आदि उनकी कालजयी रचनाएँ हैं। इसके साथ ही उनकी सांस्कृतिक दृष्टि, जहाँ तमाम मज़हबी और सांप्रदायिक भेद मिट जाते हैं, को समझने की ज़रूरत है। नज़ीर ने जिन रचनाओं से समन्वय की ज़मीन तैयार की, आज कुछ लोग उन्हें हिंदी-उर्दू के विवाद में देखकर नज़ीर का सारा श्रम बेकार करते नज़र आते हैं।

## तृतीय अध्याय :

# नज़ीर के काव्य के विविध पक्ष


3.1 धर्म/मज़हब और नज़ीर की कविता

3.2 नज़ीर का सांस्कृतिक-बोध

3.3 नज़ीर की कविता में दार्शनिक तत्व

3.4 नज़ीर की कविता में आधुनिक चेतना

3.5 नज़ीर की रचनाधर्मिता और सौन्दर्यबोध

## तृतीय अध्याय

# नज़ीर के काव्य के विविध पक्ष

हिंदी कविता में नज़ीर अकबराबादी एक बड़े वितान के कवि हैं। जिनका सम्यक् मूल्यांकन अब तक नहीं हो पाया है, नज़ीर पर प्रायः चलते-चलते ही बात हुई है। वास्तव में नज़ीर का काव्य-संसार बहुत बड़ा है जिसमें हर उम्र के लिए कविता है, हर मौसम के लिए, हर तबके और हर व्यक्ति के लिए कविता है और सबसे महत्त्वपूर्ण उनके यहाँ जीवन और मनुष्य के लिए कविता है। समग्रता में कहें तो उनके यहाँ जीवन के हर रूप-रंग के लिए कविता है। सही मायनों में वे एक लोक कवि हैं। उनके लिए 'अवामी शाइर' का विशेषण एक सम्मान है। वस्तुतः हिंदी में अब तक नज़ीर को समझा नहीं गया, जिन लोगों ने समझा भी तो उन्हें सांस्कृतिक सम्मिलन का कवि अथवा कृष्ण भक्त मानकर ही अपनी स्याही बचा ली किन्तु कृष्ण और संस्कृति के अतिरिक्त भी नज़ीर की कलम चली है, जहाँ वे 'पेट की फिलोसोफी' पर बात करते हैं, 'कौड़ी' की बात करते हैं, 'रुपये की फिलोसोफी' की बात करते हैं, 'आटे दाल का भाव' की बात करते हैं, 'शहरे आशोब' की बात करते हैं, भूचाल की बात करते हैं और भी बहुत कुछ। वास्तव में नज़ीर लोक-जीवन के दार्शनिक हैं। नज़ीर की कविता अपने समय को बहुत बारीकी से अभिव्यक्त करती है। उनकी कविता में अपने समय की राजनीतिक अस्थिरता के लिए रोष भी है और अपने सामाजिक जीवन की जीवंतता के प्रति प्रेम भी।

नज़ीर का काव्य-काल रीतिकाल के अंतर्गत आता है किन्तु उनकी रचनाओं के स्वर रीतिकालीन काव्य-बोध से कुछ अलग ही थे। हिंदी साहित्य की रीतिकालीन कविता जहाँ दरबार से मुक्त नहीं हो पायी थी वहीं नज़ीर की कविता आगरा के गली-कूचों से तैयार हो रही थी। हालांकि उनकी कविता रीतिकालीन काव्य-बोध से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पायी थी किन्तु फिर भी उनका पक्ष स्पष्ट था। राजा भरतपुर और नवाब-ए-अवध का निमंत्रण ठुकराना उनकी पक्ष-धरता की पुष्टि करता

है। उनका साहित्य आम जनता का स्वर लिए हुए आम जनता के लिए ही था, भाषा की दृष्टि से भी और कथ्य की दृष्टि से भी। 'समूचे रीतिकाल में नज़ीर अपनी साधारणता में असाधारण हैं'[61] वस्तुतः हिन्दी साहित्य में अब तक जो नज़ीर के बारे में पढ़ने और सुनने को मिलता है, उसमें वे सांस्कृतिक एका के कवि हैं। वह भी इसलिए क्योंकि उन्होंने एक तरफ 'ईद' और 'शब्बरात' पर नज़्में लिखीं तो दूसरी तरफ 'होली' और 'दिवाली' पर भी लिखा। 'नात हज़रत मुहम्मद' और 'खुदा की तारीफ' लिखी तो 'गणेश की स्तुति', 'गुरुनानक शाह' और 'हरी की तारीफ' भी लिखी। निश्चित रूप से इसके लिए उन्हें सराहा जाना चाहिए किन्तु उनका मूल्यांकन केवल इसी फ्रेम में किया जाए ये उचित नहीं है। नज़ीर की कविताओं का कैनवास बहुत बड़ा है। वस्तुतः वर्ड्सवर्थ अपने 'लिरिकल बैलेड्स' में कविता की भाषा और कथ्य पर बात करते हुए जिस 'ग्राम्यता' की बात कर रहे थे। वर्ड्सवर्थ से करीब चालीस-पचास वर्ष पहले ही वह नज़ीर की कविताओं में मिलती है। इनका काव्य संसार उस 'ग्राम्यता' के बहुत नज़दीक ठहरता है। इनकी नज़्मों में साधारण जीवन का, साधारण भाषा में बहुत विस्तार से वर्णन हुआ है। उनकी किसी कविता को देख लिया जाए उनमें सामान्य जन-जीवन का चित्र मिलेगा और विशद रूप में मिलेगा चाहे होली का ज़िक्र आए दिवाली का, ईद का या बरसात का या आगरा शहर ही क्यों न हो। नज़ीर के यहाँ कविताओं का व्यापक संसार है। उनकी कविताओं में मौजूद विभिन्न पक्षों पर हम इस रूप में विचार कर सकते हैं –

### 3.1 धर्म / मज़हब और नज़ीर की कविता

हिंदी इतिहासकारों का अनुसरण करते हुए नज़ीर अकबराबादी का परिचय मुसलमान कवि के रूप में देना वास्तव में उनका कद छोटा करना है। वास्तव में वे न तो मुसलमान थे और न ही हिन्दू, वे हिन्दुस्तानी थे। वे पंज-वक्ता नमाजी थे और अपनी ज़मीन आगरा से प्रेम करने वाले सच्चे

[61] सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 244

भारतीय थे। आगरा उनके अन्दर रचा बसा था। इसीलिए उनकी कविताओं में आगरा की एक-एक चीज़ का ज़िक्र आया है। वे सामासिक संस्कृति के कवि थे इसीलिए उनकी कविताओं में एक तरफ तो हम्द, नात, मन्कबत, है तो दूसरी ओर स्तुति और तारीफ है। एक तरफ 'जोरे बाजुए अली' है तो दूसरी ओर 'दुर्गा जी का दर्शन' है। 'खैबर की लड़ाई' है तो कृष्ण-सुदामा की मित्रता भी है। 'मोजिजा हजरत अली' है, तो 'रुक्मिणी का ब्याह' भी है। पूरे हिंदी साहित्य में संभवतः नज़ीर अकेले ऐसे कवि हैं जिनके यहाँ अल्लाह, नानक और हरी तीनों एक साथ मिलते हों। नज़ीर की कविताओं में धार्मिक चरित्रों का उल्लेख मिलता है और भरपूर मिलता है किन्तु उनमें लेश मात्र भी साम्प्रदायिकता की गंध नहीं है। वर्तमान समय में हम सेकुलर स्टेट के नागरिक होने के बावजूद किसी अन्य मज़हब और धर्म के खान-पान, रंग-ढंग की प्रशंसा करना तो दूर उसे समझने और बर्दाश्त करने में भी हमें दिक्कत हो रही है आज से करीब 250 वर्ष पूर्व मुग़लिया सल्तनत में रहने वाले नज़ीर को पंज-वक्ता नमाज़ी होते हुए भी राम और कृष्ण का नाम लेने से कोई परहेज नहीं था। संभवतः उस दौर के हिन्दू-मुसलमानों द्वारा दूसरे मज़हब के धार्मिक पुरुषों का नाम लेने से उनका धर्म भ्रष्ट नहीं होता होगा। कम से कम नज़ीर के साथ तो यह स्थिति थी। जितनी श्रद्धा से उन्होंने हम्द लिखा उतनी ही श्रद्धा से उन्होंने गणेश जी की स्तुति लिखी-

'इलाही तू फय्याज़ है और करीम।
इलाही तू गफ़्फ़ार है और रहीम।
मुक़द्दस मुअल्ला मुनज़्ज़म अजीम।
न तेरा शरीक और न तेरा सहीम।
तेरी जाते-वाला है यकता क़दीम।'[62]

x x x x

'अव्वल तो दिल में कीजिए पूजन गनेश जी।
स्तुति भी फिर बखानिए धन-धन गनेश जी।
भक्तों को अपने देते हैं दर्शन गनेश जी।

[62] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-1

वरदान बख़्शते हैं जो देवन गनेश जी।
हर आन ध्यान कीजिए सुमिरन गनेश जी।
देवेंगे रिद्धि सिद्धि औ अन-धन गनेश जी॥'[63]

इन पंक्तियों में नज़ीर एक तरफ तो अल्लाह को सर्वश्रेष्ठ, क्षमावान, रहम करने वाला और अनादि बता रहे हैं तो दूसरी ओर सबसे पहले गणेश की पूजा करने की बात कर रहे हैं। नज़ीर के लिए धर्म संस्कृति से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। वास्तव में आज हमारे लिए ये आश्चर्य की बात हो सकती है कि किसी हिन्दू मंदिर में मुसलमान द्वारा लिखी हुई आरती गायी जाए किन्तु 18 वीं सदी के भारत के लिए साधारण बात थी जब औरंगजेब की मृत्यु के 50 वर्ष भी नहीं हुआ था। नज़ीर का इस्लामी आद्य कथाओं से उतना ही गहन परिचय हैं जितना गहन हिन्दू आद्य कथाओं से। उन्होंने लोक और पौराणिक कथाओं को अपनी कविता में जगह दी है। 'मज्लूम शेरनी का इंसाफ', 'खैबर की लड़ाई', 'कन्हैया जी का जन्म', 'महादेव का ब्याह', 'सुदामा चरित्र', 'श्री कृष्ण व नरसी मेहता' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं जिसमें मौजूद कथा प्रायः हम अपने बचपन में दादी नानी से सुने होंगे। इनमें प्रायः कोई न कोई नसीहत होती है जो लगभग भारतीय घरों के बड़े बुजुर्ग की ज़बान पर रहती है।

नज़ीर की प्रार्थना में केवल मनुष्य ही नहीं राक्षस भी हैं, नदी और नहर के साथ नाले और डबरे भी आते हैं, अमीर से लेकर गरीब तक, अंगूर से लेकर कटहल तक, शेर हाथी से लेकर नेवले और गिरगिट तक, और तोता मैना से लेकर मच्छर और मक्खी तक सब कुछ आता है क्योंकि नज़ीर की प्रार्थना कुल आलम के लिए है।

[63] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-73

### 3.2 नज़ीर का सांस्कृतिक-बोध

नज़ीर की कविताओं में जो स्वर सबसे मुखर होकर आया है वह संस्कृति का है। आगरा और ब्रज की सामासिक संस्कृति का नज़ीर पर जो प्रभाव पड़ा वह उनकी कविताओं में स्पष्ट देखा जा सकता है। दरअसल आगरा अकबर की भूमि है। अकबर के शासन काल में हिन्दू-मुस्लिम की जो कवायद शुरू हुई थी उसका प्रभाव आगरा में दीर्घकाल तक रहा। नज़ीर का काव्य विवेक भी इसी आगरे में विकसित हुआ यही कारण है कि उनकी कविता में आगरा का कण-कण मौजूद है। आगरा के मेले, वहाँ का पर्व-त्यौहार, खान-पान, वेश-भूषा, कथा-कहानियाँ, वहाँ का बाज़ार, समाज उसका दुःख-सुख और भी तमाम चीजें उनकी कविता में देखी जा सकती हैं। नज़ीर ने अपना उपनाम ही अकबराबादी रख लिया। अकबराबाद आगरा का ही एक नाम है जो शाहजहाँ ने रखा था। नज़ीर ने लिखा है-

‘रखता है गो क़दीम से बुनियाद आगरा।
अकबर के नाम से हुआ आबाद आगरा।।’[64]

नज़ीर की आगरा से प्रेम की बात छिपी नहीं है। आगरा पर ये करीब पाँच कविताएँ लिखते हैं जिनमें से एक ग़ज़ल है। इन रचनाओं में आगरा की दो स्थितियों का वर्णन मिलता है। पहला जब वह समृद्ध था और दूसरा जब अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण से आगरा उजड़ चुका था। इन कविताओं में हम उस समय के आगरे का चित्र देख सकते हैं। ‘शहर अकबराबाद’ में नज़ीर आगरा की सुबह का बिम्ब खींचते हैं जिसका तेज और सौंदर्य परियों के कपोलों को भी शर्मिंदा कर देता है और शाम ऐसी कि लैला की घुंघराली केशराशी भी उसकी बराबरी नहीं कर सकती। आगरा की हरियाली और इमारतों की नक्काशियां, बाज़ार, आबो-हवा ऐसी की हर तरफ खुशी के फूल खिल रहे हैं। इस कविता में नज़ीर आगरा के सौंदर्य का वर्णन करते हुए उसे बुरी नज़र से बचाने

[64] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-483

की दुआ करते हैं। अगली कविता 'ताजगंज का रोज़ा' में ताजमहल का वर्णन है। इसमें रोज़ा का अर्थ मज़ार है। मौखिक परंपरा में इसका एक शीषर्क और है 'ताजबीबी की मज़ार'। पुराने लोगों में ताजमहल का ये नाम मशहूर है। 'शहर आगरा' ग़ज़ल शैली में है। महज़ आठ बंद में नज़ीर आगरे की प्राचीनता, उसकी समृद्धि और उसकी बदहाली का चित्र खींच देते हैं। नज़ीर लिखतें है –

'अब तो ज़रा सा गाँव है, बेटी न दे इसे।
लगता था वरना चीन का दामाद आगरा।।'[65]

आगरा को मुग़लों ने बसाया था और अकबर ने इसे अपनी राजधानी बनायीं। अक़बर के शासन में आगरा के समृद्धि इतनी थी कि वर्तमान अफगान का एक प्राचीन नगर बलख -जिसे पहला नगर भी माना जाता है- इससे रश्क करता था।

आगरे पर केन्द्रित नज़ीर की दो रचनाएँ और मिलती हैं 'शहरे आशोब' और 'भूचालानामा' ये दोनों लम्बी कविता है। इनमें आगरा पर आयी विपत्तियों का ज़िक्र है। भूचालनामा में आगरा में आये भूकंप का वर्णन है। 'शहर-ए-आशोब' का अर्थ है शहर की दुर्दशा। इसमें नज़ीर ने अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के बाद आगरे की स्थिति का वर्णन किया है। आगरे का हाल ये है कि क्या सौदागर, क्या व्यापारी, कोतवाल, मल्लाह, हज्जाम, किताब बेचने वाला, डमरू बजाने वाला, सिपाही, पंडित, मुल्ला और पीर तक का कारोबार बंद पड़ा है।

'कुछ एक दो के काम का रोना नहीं है यार।
छत्तीस पेशे वालों के हैं कारोबार बंद ।।'[66]

xx

'क्या छोटे काम वाले वह क्या पेशेवर नजीब।
रोजी के आज हाथ से आजिज़ है सब गरीब ।।'[67]

---

[65] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-484

[66] वही, पृष्ठ संख्या-486

[67] वही, पृष्ठ संख्या-489

इन कविताओं में आगरे के लोगों के दुःख का मर्मस्पर्शी वर्णन मिलता है। वास्तव में वह समय आगरा वासियों के लिए बहुत संकटपूर्ण था। जाट और मराठे भी समय पा-पाकर दिल्ली और आगरे पर चढ़ बैठते हैं। गंगा और यमुना के हरे भरे मैदान मरुस्थल हो चुके थे। दरिद्रता अपने चरम पर थी। मुग़ल साम्राज्य के न रहने से छावनियाँ उजड़ गयी थी। सबसे ख़राब स्थिति सैनिकों की थी। वे अपने अस्त्र बेचकर पूर्णतः भिक्षुक हो गये थे-

'हथियार बेच हो के गदा घर बेघर गए।
जब घोड़े भाले वाले भी यों दरबदर गए।।
फिर कौन पूछे इनको जो अब हैं कटार बंद।।'[68]

वास्तव में नज़ीर ने अपने समय की घटनाओं का बहुत बारीकी से वर्णन किया है। नज़ीर की कविता अपने समय का इतिहास प्रस्तुत करती है। यह इतिहास शायद ही किसी इतिहास की किताब में दर्ज होगा। यह जन-सामान्य का इतिहास है अतः जनकवि की कविता में ही दर्ज हो सकता था।

उत्सव का वर्णन करते हैं तो क्या होली और क्या ईद क्या मेला और क्या उर्स किसी प्रकार का मज़हबी भेद-भाव उनमें नज़र नहीं आता। वास्तव में नज़ीर इन पर्व त्यौहारों को उनके लोक प्रचलित रूप में स्वीकार करते हैं। उनके धार्मिक महत्व से उनका कोई ताल्लुक़ नहीं था। वे जितना होली और दिवाली के बारे में जानते थे उतना ही ईद और शब्बरात के बारे में जितनी मस्ती से वे बल्देव जी के मेले में शरीक होते उतनी मस्ती से वे हज़रत सलीम चिश्ती के उर्स में शामिल होते थे। इन सब को उन्होंने कलम-बद्ध किया। नज़ीर की रचनाओं में हमें ब्रज की उत्सवधर्मी संस्कृति का प्रभाव पर्याप्त नज़र आता है जो धर्म से बिलकुल भी प्रभावित नहीं है। दिवाली उनकी तीन रचनाएँ हैं किन्तु किसी में राम या राम के विजयोत्सव का ज़िक्र नहीं है। उसी प्रकार होली पर लिखे बीसियों रचनाओं में से किसी में होलिका या प्रहलाद से संबंधित पौराणिक कथा का ज़िक्र नहीं है और न ईद

[68] वही, पृष्ठ संख्या-490

और शब्बरात में किसी मज़हबी किस्से का ज़िक्र आता है। नज़ीर की रुचि किसी पर्व के उत्सव में है उसके खान-पान में है। यही कारण है की नज़ीर ने जिस रूप में अपने समय के सामाजिक जीवन को कविताओं में अंकित किया है वैसा अंकन किसी समकालीन कवि के यहाँ नहीं मिलता। नज़ीर ने इन पर्व त्यौहारों के जो चित्र अपनी कविताओं में खींचे हैं वे हमें चलचित्र का आभास कराते हैं, लगता है जैसे कोई वीडियो चल रहा हो। अपने समय का जीता जागता चित्र उपस्थित कर देते हैं। वास्तव में यह नज़ीर का अद्वितीय कौशल है। एक तरह की रिपोर्टिंग अथवा कमेंट्री की तरह -

'हर इक मक़ां में जला फिर दिया दिवाली का।
हर इक तरफ़ को उजाला हुआ दिवाली का।
सभी के दिल में समां भा गया दिवाली का।
किसी के दिल को मज़ा ख़ुश लगा दिवाली का।
अजब बहार का है दिन बना दिवाली का।।'[69]

xx xx

'खिलौने मिट्टी के घर में कोई ले आता है।
चिराग़दान कोई हड़ियां मगाता है।
सिवई गूंजा व मटरी कोई पकाता है।
दिवाली पूजे है हंस-हंस दिये जलाता है।
हर एक घर में समां छा गया दिवाली का।।'[70]

xx xx

'है धूम आज मदरसओ ख़ानकाह में।
तांते बंधे हैं मस्जिदे जामा की राह में।
गुलशन से खिल रहे हैं हर इक कज कुलाह में।
सौ-सौ चमन झमकते हैं एक-एक निगाह में।
क्या – क्या मज़े हैं ईद के आज ईदगाह में॥'[71]

xx xx

'कुछ भीड़ सी है भीड़ कि बेहदो बेशुमार।
खल्क़त के ठठ के ठठ हैं बंधे हर तरफ़ हज़ार।

[69] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या -371

[70] वही, पृष्ठ संख्या-371

[71] वही, पृष्ठ संख्या -329

हाथी व घोड़े, बैलो, रथ व ऊंट की कतार।
गुलशोर बाले भोले खिलौनों की है पुकार।
क्या - क्या मज़े हैं ईद के आज ईदगाह में॥'[72]

हर घटना का वर्णन मौजूद है। ऐसा लगता है कि नज़ीर के समक्ष वह दृश्य मौजूद है और वे दुनिया के सामने उसकी कमेंट्री कर रहे हों। दरअसल ये वर्णनात्मक अरबी कविता में विशेष महत्व रखती है जिसे अरबी में 'तर्ज़ेबयाँ' कहते हैं। अरबी साहित्य-समीक्षा में तर्ज़ेबयाँ विशेष महत्व रखता है जिसे उर्दू ने भी ग्रहण किया है। संभव है नज़ीर पर भी इसका प्रभाव पड़ा हो। हालांकि नज़ीर ने अपनी एक कविता में स्वयं को अरबी से अनभिज्ञ बताया है।

वास्तव में 'पर्वोत्सव मानवीय मनोभावों को क्रियात्मक रूप देते हैं। वे मानव-जाति के सांस्कृतिक दर्पण है क्योंकि युगों-युगों के संस्कार उन पर्वोत्सव में संचित रहते हैं।'[73] संभवतः यही कारण है कि नज़ीर के जीवन में पर्व-त्यौहारों का विशेष महत्व है। उनकी कविताओं में एक लम्बी श्रृंखला इन पर्व त्यौहारों को समर्पित है। होली, दिवाली, शब्बरात, ईद, रक्षाबंधन या आगरा के आसपास के मेले सब पर नज़ीर ने अलग-अलग कविता लिखी है। होली संभवतः नज़ीर को विशेष प्रिय थी इसीलिए होली पर इन्होंने बीस से भी अधिक कविता लिखी अथवा यह ब्रज-भूमि का प्रभाव भी हो सकता है। वास्तव में ब्रज संस्कृति में होली का विशेष महत्व है। यह रूठों को भी मिला देता है, डॉ. मोहन अवस्थी ब्रज की होली के बारे में लिखते हैं - "होली में न केवल हृद्यावेग बाँध तोड़कर फूट पड़ता था, अपितु मन की सारी दुर्भावनाएं समाप्त कर दी जाती थीं। मित्रों की कौन कहे दुश्मन भी अपने मन का मेल दूर कर गले मिलते थे"[74] ब्रज में होली का पर्व ऐसे मनाया जाता है कि उस दिन ब्रजवासी गाली देकर अपना प्रेम जताते थे, नज़ीर कविता में इसका ज़िक्र आया है-

---

[72] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-330

[73] अवस्थी, डॉ. मोहन, हिंदी-रीतिकविता और समकालीन उर्दू-काव्य, सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, पृष्ठ संख्या- 123

[74] वही, पृष्ठ संख्या- 127

'जो हँस के दो हमें प्यारे तुम इस घड़ी गाली।
तो हम भी जाने की ऐसा है प्यार होली में ।।'[75]

होली पर लिखी एक कविता में नज़ीर ने होली को नायिका के रूप में चित्रित किया है। युवा और वैभवशालिनी नायिका के रूप में जो अपनी नाजों-अदा से दूसरों को रिझाती है और अपने साथ सौभाग्य लाती है-

'जब आयी होली रंग भरी सौ नाज़ अदा से मटक-मटक।
और घूँघट के पट खोल दिए वो रूप दिखाया चमक-चमक।
कुछ मुखड़ा करता दमक-दमक अबरन करता झलक-झलक।
जब पाओं रखा खुशवक्ती से तब पायल बाजी झनक-झनक
कुछ उछलें सुनती नाज़ भरी गोदी आयें थिर थिरक।।'[76]

यहाँ मानवीकरण अलंकार का प्रयोग है। भाषा में संगीत और कोमलता है। दिवाली पर भी नज़ीर की दृष्टि उसी रूप में गयी है, जो जन-सामान्य द्वारा ग्राह्य है। पूजन से ज्यादा खान-पान पर ध्यान है। भिन्न-भिन्न तरह की मिठाइयां, खेल-खिलौने और दीपों का प्रकाश-

'दोशाला, शाल, ज़री, ताश, बादले की बहार।
खिलौने खीलों, बताशों के लग रहे अम्बार... ।।'[77]

XX XX

'बताशे ले कोई बर्फ़ी किसी ने तुलवाई।
खिलौने वालों की उनसे ज्यादा बन आई।
गोया इन्हों के वां राज आ गया दिवाली का...।।'[78]

---

75 मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या -332
76 वही, पृष्ठ संख्या -355
77 वही, पृष्ठ संख्या- 371
78 वही, पृष्ठ संख्या -372

नज़ीर ने प्रत्येक त्यौहार का बहुत बारीकी से वर्णन किया है। दिवाली पर ताश खेलने की प्रथा भी नज़ीर से चुकी नहीं साथ ही इससे यह भी पता चलता है कि यह परंपरा नयी नहीं है, यह नज़ीर के समय में भी मौजूद थी। नज़ीर भारतीय जनता के सच्चे प्रतिनिधि हैं। यही कारण है कि उत्सव के मौकों पर उनकी नज़र केवल उसके वैभव पर ही नहीं जाती, बल्कि अभाव में रहने वालों पर भी जाती है। ये समाज का वह तबका है, आज भी जिसके लिए पर्व, उत्सव से ज्यादा बड़ी समस्या है अपनी दरिद्रता। इसके बावजूद उधार लेकर उत्सव मनाते हैं -

'किसी ने नकद लिया और कोई करे है उधार
सभों को फ़िक्र है अब जा बजा दिवाली का।।'[79]

रक्षाबंधन के त्यौहार से भी नज़ीर परिचित थे। उन्होंने एक कविता राखी पर भी लिखी है। राखी वस्तुतः भाई-बहन के रिश्ते का पर्व है। इसमें बहन अपने भाई को राखी बांधती है और बदले में भाई अपनी बहन को उसकी रक्षा का वचन देता है किन्तु विभिन्न पुराणों में इससे संबंधित अलग-अलग कथा है। भविष्य पुराण में देव-दानव युद्ध के समय इंद्राणी द्वारा इंद्र की रक्षा के लिए राखी बांधने का ज़िक्र है। महाराष्ट्र में तो आज भी महिलाएँ अपने पति को राखी बांधती हैं। वहीं विष्णु-पुराण में भी देवी लक्ष्मी द्वारा राजा बलि को राखी बाँध कर उन्हें भाई बना बैकुंठ लाने की कथा है। इतिहास में राजपूतों से संबंधी एक प्रसंग है। राजपूत जब लड़ाई पर जाते थे तब महिलाएँ उनको माथे पर कुमकुम तिलक लगाने के साथ-साथ हाथ में रेशमी धागा भी बाँधती थी। इस विश्वास के साथ कि यह धागा उन्हें विजय के साथ वापस ले आएगा। राखी के साथ जुड़ी हुमायूँ और रानी कर्णवती की कथा से तो हम परिचित हैं ही। लोक में एक कथा यह भी है कि ब्राह्मण अपनी रक्षा के लिए अपने राजा अथवा यजमान को राखी बांधते थे। नज़ीर की कविता में राखी का जो स्वरूप मिलता है वह कुछ ऐसा ही है-

[79] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या -371

'पहन जुन्नार और क़श्क़ लगा माथे ऊपर बारे।
'नज़ीर' आया है बाम्हन बनके राखी बाँधने प्यारे।
बँधा लो उससे तुम हँसकर अब इस त्यौहार की राखी।।'[80]

ईद की धूम भी नज़ीर के यहाँ खूब मिलती है। शब्बरात की महताबियां भी नज़ीर की कविताओं में उसी उल्लास के साथ मौजूद है। उन्होंने 'शब्बरात', 'ईद', 'इदुलफित्र' और 'ईदगाह' अकबराबाद का आँखों देखा और अनुभूत वर्णन इस रूप में प्रस्तुत किया –

'क्योंकर करे न अपनी नमूदारी शब्बरात।
चल्पक, चपाती, हलवे से है भारी शब्बरात।
जिंदों की है जुवां की मज़ेदारी शब्बरात।
मुर्दों की रूह की है मददगारी शब्बरात।
लगती है सबके दिल को गरज़ प्यारी शब्बरात।।'[81]

पर नज़ीर इस हँसी-खुशी के त्यौहार में गरीबों की क्या स्थिति है, इसका उल्लेख इन शब्दों में करते हैं:

'ठिलिया, चपाती हलवे की तो सबमें चाल है।
अदना गरीब के तई यह भी मुहाल है।
काले से गुड़ की लपटी कढ़ी की मिसाल है।
पानी की हांड़ी, गेंहू की रोटी भी लाल है।
करती है ऐसी दुखिया पिसनहारी शब्बरात।।'[82]

नज़ीर अपनी कविताओं में आगरा के मेलों का भी वर्णन करते हैं। 'बल्देव जी का मेला', 'कंस का मेला', 'हज़रत सलीम चिश्ती का उर्स', 'लल्लू जगधर का मेला', 'आगरे की तैराकी'(तैराकी का मेला) आदि। मेले किसी समाज की संस्कृति का अभिन्न अंग होते हैं। मेलों से भी बहुत सी लोक

[80] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-380
[81] वही, पृष्ठ संख्या-315
[82] वही, पृष्ठ संख्या-316

कथाएँ जुड़ी होती हैं। नज़ीर जिस-जिस मेले में शरीक हुए उन सब पर लिखा। आगरा जनपद में फतेहपुर सीकरी के पास हज़रत सलीम चिश्ती की दरगाह है। ये अकबर-कालीन सूफी संत थे। उनकी मृत्यु के बाद अकबर ने उनकी समाधि बनवाई थी तब से अब तक वहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है जिसे उर्दू में उर्स कहते हैं। नज़ीर ने अपनी कविता 'हज़रत सलीम चिश्ती का उर्स' में इस मेले का महत्व बहुत गीतात्मक रूप में बताया है –

'हूरो गिल्मां की रूह तरसे है।
और इशारा यही नज़र से है।
रश्क है गुलशने बहिश्ती का।
उर्स हज़रत सलीम चिश्ती का॥'[83]

यह मेला स्वर्ग के बाग़ के लिए भी ईर्ष्या का विषय है। इस मेले में आने के लिए परियाँ और स्वर्ग के बालक भी तरसते हैं। हूर स्वर्ग में रहने वाली परियों का पर्याय है और गिल्मा स्वर्ग के बालक को कहा जाता है। आज करीब साढ़े चार सौ साल से भी अधिक होने को है किन्तु यह मेला अब तक बंद नहीं हुआ।

'बल्देव जी का मेला' मथुरा के पास बल्देव या दाऊजी नामक स्थान है जहाँ कृष्ण के बड़े भाई बलराम का और उनकी पत्नी रेवती का मंदिर है जहाँ हर साल अगहन की पूर्णमासी को बल्देव जी का मेला लगता है। नज़ीर ने इस कविता में इसी मेले का वर्णन किया है-

'क्या वह दिलबर कोई नवेला है?
नाथ है, और कहीं वह चेला है।
मोतिया हैं, चंबेली बेला है।
भीड़ अम्बोह है, अकेला है।
शहरी, क़स्बाती और गंवेला है।
ज़र अशर्फी है, पैसा, धेला है।

[83] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-381

एक क्या-क्या वह खेल खेला है।
भीड़ है ख़ल्क़तों का रेला है।
रंग है रूप है, झमेला है।
ज़ोर बल्देव जी का मेला है॥'[84]

इसी प्रकार 'कंस का मेला' भी आगरा में राजामंडी के पास मनाया जाता है जिसमें कृष्ण और बलराम कंस का वध करते हैं। लोक मान्यता है कि इसी जगह कृष्ण ने कंस का वध किया था। कवि नज़ीर ने अपनी इस कविता में इस मेले का वर्णन बहुत विस्तार से किया है अतः कविता कुछ लम्बी हो गयी है। 'लल्लू जगधर का मेला' एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर मनाया जाता है। वस्तुतः यह घटना अल्लाउद्दीन खिलजी के ज़माने की है। कथा है कि खिलजी की सेना में बहुत से खत्री लोग थे। एक बार युद्ध में सैनिक मारे गए जिनकी विधवाओं में से कई सती हो गयीं किन्तु बहुत सी विधवाएँ रह गयी अतः उनकी स्थिति देखकर बादशाह खिलजी ने अपने मंत्री से इनकी दूसरी शादी कराने को कहा। जिसका बीड़ा आगरा के खत्रियों के चौधरी जगधरमल ने उठाया। समाज में विधवा विवाह स्वीकार्य ना होने से जगधरमल को समाज का कोप सहना पड़ा। प्रतिवर्ष एक निश्चित तिथि को पूरे देश से खत्री समाज के लोग आगरा में जगधरमल के यहाँ उन्हें गालियाँ देने जाते थे। यह प्रथा उनके मृत्योपरांत भी चलती रही। अतः बाद में इसने एक मेले का रूप ले लिया। इस दिन लल्लू जगधरमल को खूब गालियाँ दी जाती है। यह मेला नज़ीर के समय तक इसी रूप में मनाया जाता था। अतः नज़ीर ने उस पर कविता लिख डाली। इसमें वे विस्तार से इस मेले की घटनाओं को बताते हैं-

'होता है बरसवें दिन यह आगरे में मेला।
मुद्दत से लल्लू जगधर है नाम उसका ठहरा॥
सौ भीड़ और भड़के अम्बोह और तमाशा।
हरदम 'नज़ीर' भी अब कहता है यों अहा! हा!

[84] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-385

टुक देख रोशनी को अब ताजगंज अन्दर।
धी का टना मरावे लल्लू का बाप जगधर॥'[85]

इसके अतिरिक्त 'आगरा की तैराकी' भादों महीने में आगरा के यमुना घाट पर लगने वाले तैराकी के मेले का वर्णन है। जिसमें तैराकों द्वारा तैरने के भिन्न-भिन्न तरीकों का भी ज़िक्र है। निर्जला एकादशी को आगरा में पतंग का मेला लगता है। इस दिन पतंगें उड़ाई जाती है। इस मेले पर भी नज़ीर ने 'कनकौए और पतंग' शीर्षक से एक कविता लिखी है। इस कविता में भिन्न-भिन्न पतंगों का वर्णन आता है।

मेलों के अतिरिक्त नज़ीर ने आगरा के खेल-तमाशों को भी अपने काव्य संसार में जगह दी है। 'कबूतर बाज़ी' और 'बुलबुल की लड़ाई' नामक दो कविताएँ लिखीं जिसमें वे अपने समय के खेलों का वर्णन करते हैं। पशु-पक्षियों के वर्णन में वे 'बया', 'गिलहरी का बच्चा', 'रीछ का बच्चा', 'अजदहे का बच्चा' आदि शीर्षक से कविताएँ हैं।

अपने समय की कथा-कहानियों को भी नज़ीर ने कलम-बद्ध किया। आगरा चूंकि ब्रज-क्षेत्र का हिस्सा है और ब्रज कृष्ण की भूमि रही है अतः वहाँ से संबन्धित कई कथाएँ आगरा की भूमि में भी प्रसिद्ध है। कृष्ण के जन्म की कथा, उनके खेलकूद की कथा, उनके बचपन की बाँसुरी-वादन की कथा, रुकमनी से उनके विवाह की कथा, सुदामा से मैत्री की कथा, नरसी मेहता की कथा इत्यादि। नज़ीर ने प्रबंध-काव्य भी लिखने का प्रयास किया- 'महादेव जी का ब्याह' नाम से एक खंड-काव्य लिखा हैं। डॉ. दामोदर प्रसाद वशिष्ट ने नज़ीर की लोक कथा संबंधी कविताओं को आख्यान काव्य कहा है।

आदिकाल से आधुनिक काल तक किसी न किसी रूप में प्रकृति साहित्य में मौजूद रही है। चंदबरदाई से लेकर केदारनाथ सिंह तक की रचना में प्रकृति की उपस्थिति दर्ज है। आधुनिक काल

[85] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-403

में तो हमारे पास 'प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पन्त भी मौजूद हैं। जिनके यहाँ प्रकृति का हर रंग मौजूद है किन्तु फिर भी प्रकृति का जो रूप नज़ीर के यहाँ हैं वो शायद ही हिंदी और उर्दू के किसी अन्य कवि के यहाँ मिले। बरसात की बहारों से एक उदाहरण देखा जा सकता है-

'फुंसी किसी के तन में, सर पर किसी के फोड़े ।
छाती पे गर्मी दाने और पीठ में ददौड़े।
खा पूरियां किसी को हैं लग रहे मड़ोड़े।
आते हैं दस्त जैसे दौड़े इराक़ी घोड़े ।
क्या-क्या मची हैं यारों बरसात की बहारें ।।'[86]

यह बहुत साधारण जीवन का अनुभव है। बरसात का मौसम केवल रोमानी नहीं है बल्कि उसके साथ कई असुविधाएँ भी आती हैं। इसी कविता में कवि ने बताया है कि जो धनवान हैं वे बरसाती हवा से बचने के लिए ख़ास तरह की लोई का प्रयोग करते हैं किन्तु मुफलिसों को सिरकी या बोरियों से काम चलाना पड़ता है। जिनके पास धन कुछ अधिक है उनके सर पर छतरी है किन्तु जो गरीब हैं उनके पैरों के नीचे कीचड़ और चप्पलें हाथों में है। किसी का कपड़ा कीचड़ से महक रहा है तो किसी के मुंह में कीचड़ भर गया। बरसात बहुत से लोगों के लिए परेशानियाँ भी लेकर आती है। किन्तु फिर भी यही एक ऐसा मौसम है जिसमें 'खुर्दो-कबीर' और 'मुफ्लिस गरीब' दोनों खुश हैं। बरसात बहार लाती है तो फिसलन भी लाती है, बारिश में छत भी टपकती है। कहीं संयोग है तो कहीं वियोग है, कहीं भंग की मस्ती है तो कहीं मय-परस्ती है। कहीं एश का नज़ारा है तो कहीं पुआल तले गुज़ारा है। कहीं पपीहे की पी-पी है तो कहीं कोयल की कू-कू है। बरसात का इतना विशद वर्णन शायद ही किसी कवि के यहाँ होगा। नज़ीर से पहले जायसी और सेनापति के यहाँ 'ऋतु-वर्णन' में वर्षा-ऋतु पर कुछ पंक्तियाँ मिलती हैं किन्तु वह बहुत सतही है। वर्षा के माध्यम

[86] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर (सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या- 458

से सामाजिक-आर्थिक वैषम्य का वर्णन बाद में निराला के यहाँ मिलता है। किन्तु 'बरसात की बहारें' में बरसात के जितने पहलू देखने को मिलते हैं उतने 'बादल राग' में भी नहीं है। निराला के यहाँ बरसात का एक सीमित पक्ष ही आया है। 'बादल राग' में निराला प्रतीकों के माध्यम से जो कुछ कह रहे हैं वह नज़ीर के यहाँ स्पष्ट रूप में मिलता है। अन्य आधुनिक कवियों में पन्त, भवानी प्रसाद मिश्र, केदारनाथ सिंह आदि कवियों ने लिखा है किन्तु नज़ीर सा व्यापक वितान किन्ही का नहीं है। बरसात पर नज़ीर की चार नज़्में मिलती हैं- 'बरसात और फिसलन', 'बरसात का तमाशा', 'बरसात की बहारें' और 'बरसात की उमस' अपनी नज़्मों में नज़ीर की दृष्टि वर्षा के तमाम पहलुओं पर गयी है। 'बरसात और फिसलन' में कवि ने दिखाया है बरसात, मानव जीवन को किस रूप में प्रभावित करती है, कहीं छज्जा गिर रहा है तो कहीं दरवाजे फिसल रहे हैं। यह कविता बताती है कि वास्तव में नज़ीर भी बरसात से प्रभावित हुए हैं, उनके छत की मिट्टी भी बरसात में चूती है –

'कोठा झुका अटारी गिरी दर फिसल पड़ा'[87]

X X

'गिरती है छत की मिट्टी और सायबान टपका'[88]

वास्तव में नए-नए मकान और महल तक बरसात से प्रभावित होते हैं। बरसात एक ऐसा मौसम जो कई बार पूरे मानव जीवन को अस्त-व्यस्त कर देती है अब वह गरीब हो या अमीर। 'बरसात का तमाशा' में कवि ने बारिश की मस्तियों को पकड़ने का प्रयास किया है। इसके बाद 'आशिक का झूला' नाम की एक कविता और मिलती है जिसमें वे सावन के झूलों की बात करते हैं- 'सावन

[87] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर (सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-441
[88] वही, पृष्ठ संख्या-453

में तो पड़ता है यों हर जात का झूला'[89]। सावन के झूलों के बरअक्स आशिकों के संयोग और वियोग का वर्णन हैं।

'जब वर्षा शुरु होती है
तब कहीं कुछ नहीं होता
सिवा वर्षा के'[90]

केदारनाथ की इस कविता में एक कवि को सहज ही लक्षित किया जा सकता है, एक शुद्ध कवि को; परन्तु नज़ीर की कविता के भीतर से एक रपट की काव्य-छाया झलक रही है, और रपट भी ऐसा जिसमें किसी 'यदि' और 'लेकिन' की गुंजाइश न बची हो। नज़ीर की प्रतिबद्धता और उनके विज़न को वहाँ से भी चिह्नित किया जा सकता है जहाँ बारिश और गुरबत का रिश्ता करते हुए हाथी पर चढ़ने वाले को भी नहीं भूलते। नज़ीर का सांस्कृतिक संस्कार बारिश को महबूब-माशूक से जोड़कर मुक्त हो जाने की इजाजत देता है परन्तु नज़ीर उन कवियों में से हैं जो जानते हैं कि रचनाएँ सीमाओं का अतिक्रमण की मांग अनिवार्यतः सामने रखती हैं ।

नज़ीर के प्राकृतिक चित्रण में जाड़े और बसंत का भी वर्णन है। जाड़े पर दो कविताएँ मिलती हैं- 'जाड़े की बहारें' और 'जाड़े के मौसम में तिल के लड्डू' और बसंत पर तो लगभग 13 कविताएँ मिलती हैं जिनमें कुछ ग़ज़लें भी हैं किन्तु जाड़े और बसंत पर बात करते हुए, नज़ीर की वह व्यापकता जो बरसात पर बात करते हुए मिलती है, कहीं खो सी जाती है जाड़े में फिर भी कवि का चिकित्सकीय ज्ञान, जिसे लोक-ज्ञान कहना ज्यादा उचित होगा, नज़र आया है। जाड़े की मौसम में तिल के लड्डू की बात करते हुए उन्हें यह भी याद है कि जाड़े में जब पेशाब सताता है

---

[89] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या- 460

[90] http://kavitakosh.org/kk/जब_वर्षा_शुरु_होती_है_/_केदारनाथ_सिंह

तो तिल का लड्डू उसका एक कारगर इलाज है। जाड़े का जो वर्णन उनके यहाँ मिलता है उसमें ठिठुरन है, दांतों की किटकिट है जो चक्की सी चलती है, प्रिय का सामीप्य किन्तु कोहरे का ज़िक्र कहीं नहीं आता। इसी तरह बसंत पर बात करते हुए वे प्रेमिका और मय तक स्थिर हो जाते हैं। आम के बौर का ज़िक्र कहीं नहीं मिलता जिससे बसंत के आगमन की सूचना मिलती है, हाँ सरसों से वे ज़रूर आह्लादित हैं। बसंत पर 'बसंत' और 'बहार' शीर्षक से करीब ग्यारह-बारह कविताएँ मिलती हैं जिनमें कुछ ग़ज़लें हैं और कुछ नज़्में हैं, जिनमें बार-बार सरसों का ज़िक्र आता है। वस्तुतः बसंत पर इन्होंने ज्यादातर ग़ज़लें ही लिखी हैं और ग़ज़लों में प्रायः ये पारंपरिक हो गये हैं।

इसके अतिरिक्त भी बहुत से विषय नज़ीर की कविता में मौजूद हैं। उन्होंने समधिन पर कविता लिखी है। हिजड़े पर कविता लिखी है। बहुत साधारण सी साधारण चीजें नज़ीर की कविता के विषय हैं मसलन श्रृंगार के उपकरणों में मेहंदी, आईना, मोती, पहुंची, बाला, आरसी, इज़ारबंद, अंगिया आदि। खाने पीने की चीजों में संतरा, तरबूज, नारंगी, जलेबियाँ, खरबूजा, आगरे की ककड़ी। नज़ीर ने कोरे बर्तन पर भी लिखा, पान, पंखा, बटुआ, ताबीज़ आदि रचनाएँ उन्होंने फेरीवालों के लिए लिखीं। डॉ. नज़ीर मुहम्मद लिखते हैं 'जब वे(नज़ीर अकबराबादी) घर से निकलते तो अकसर लोग रास्ता रोक कर खड़े हो जाते... सब कहते मियाँ पहले कविता सुनावें तब आगे जाने देंगे। नज़ीर वहीं बैठ कर कविता बनाते और घंटों सुनाते, फेरी लगाकर माल बेचने वाले उनसे कविताएँ लिखवा ले जाते और उन्हें गली कूचों में गा-गाकर अपना माल बेचा करते। ककड़ी बेचने वाला पीछे पड़ा तो 'आगरे की ककड़ी' नामक रचना हुई।'[91] नज़ीर की रचनात्मकता आम जन-जीवन के बीच की रचनात्मकता है। 'चूहों का आचार' नामक व्यंग्यात्मक कविता भी लिखी तो मक्खियों पर भी लिखा, हुक्का आदि तमाम चीजें उनकी कविता के विषय रहे हैं।

[91] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-xxi-xxii

### 3.3 नज़ीर की कविता में दार्शनिक तत्व

नज़ीर की कुछ कविताओं में सूफी दर्शन की झलक भी मिलती है। 'आशिकों की भंग', 'इश्क की मस्ती', 'दुनियां बदले की जगह है', 'दुनियां धोखे की टट्टी है', 'तवक्कुल', 'मौत का धड़का', 'मौत की फिलासफी', 'फ़ना', 'राज़ी-व-रज़ा' 'फ़कीरों की सदा', 'बंजारानामा', 'वज़्द-व-हाल', 'आदमीनामा' आदि नज़ीर की वे नज़्में हैं जो सूफी दर्शन से प्रभावित हैं। इन रचनाओं में नज़ीर ने मुख्यतः जीवन, प्रेम, सांसारिक नश्वरता और मृत्युबोध की बात की है। इन रचनाओं से पता चलता है कि नज़ीर ने प्रेम, मृत्यु और सांसारिकता संबंधी दर्शन प्रायः सूफियों से ही ग्रहण किए हैं यही कारण है कि उनका जीवन भी कलंदरी जीवन रहा। तमाम अभावों के बावजूद नज़ीर ने अपना जीवन पूरी मस्ती से जिया उनका मानना था –

'हर आन हँसी, हर आन ख़ुशी हर वक़्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा।।'[92]

एक बार जो खुदा से प्रेम हो गया तो हो गया उसमें फिर क्या अमीरी और क्या फ़कीरी –

'कुछ ज़ुल्म नहीं, कुछ ज़ोर नहीं, कुछ दाद नहीं फ़रयाद नहीं।
कुछ क़ैद नहीं, कुछ बन्द नहीं, कुछ जब्र नहीं, आज़ाद नहीं ।।
शागिर्द नहीं, उस्ताद नहीं, वीरान नहीं, आबाद नहीं ।
हैं जितनी बातें दुनियां की सब भूल गए कुछ याद नहीं ।।'[93]

ईश प्रेम में व्यक्ति सब भूल जाता है। नज़ीर की फ़कीरी ईश-प्रेम की फ़कीरी है और सूफीयों में प्रेम के तमाम रूपों में ईश-प्रेम को ही सबसे ऊपर रखा गया है जिसे वे इश्क़े हक़ीकी कहते हैं। वस्तुतः सूफी दर्शन में प्रेम ही मूल धर्म है। 'हज़रत सहल तुस्तरी ने कहा कि अल्लाह की सदैव और अनवरत भक्ति और आज्ञापालन और उसके आदेशों की अवज्ञा से सदैव के लिए परहेज़ और विमुखता का नाम

[92] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-102

[93] वही, पृष्ठ संख्या-102

प्रेम है।'[94] यह इश्क़े हक़ीकी से इश्क़े मजाज़ी अलग है जिसका अर्थ है भौतिक प्रेम। नज़ीर के यहाँ प्रेम का यह स्वरूप भी देखने को मिलता है चूंकि इश्क़े मज़ाज़ी ही इश्क़े हक़ीकी का प्रथम चरण है –

'हक़ीक़ी इश्क़ की इश्क़-ए-मजाज़ी पहली मंज़िल है
चलो सू-ए-ख़ुदा ऐ ज़ाहिदों कू-ए-बुताँ हो कर'[95]

अतः सूफी दर्शन में इसे भी पर्याप्त महत्व दिया जाता है। नज़ीर संभवतः इस बात से परिचित थे यही वजह है कि उनके यहाँ बहुत सी रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें भौतिक प्रेम का भी ज़िक्र आया है। वह भटकाव नहीं था अपितु इश्क़े हक़ीकी की आरंभिक स्थिति थी। नज़ीर तो अपने प्रेमी से भली-भाँति परिचित थे –

'हम चाकर जिसके हुस्न के हैं वह दिलबर सबसे आला है ।
उसने ही हमको जी बख़्शा उसने ही हमको पाला है ।।
दिल अपना भोला-भाला है और इश्क़ बड़ा मतवाला है ।
क्या कहिए और 'नज़ीर' आगे अब कौन समझने वाला है ।।'[96]

और यह पहचान ही उनके सच्चे आशिक़ होने का प्रमाण है नज़ीर स्वयं इस बात की वक़ालत करते हैं कि यदि कोई आशिक होने का दावा करता है तो उसे अपने दिलबर को हर रंग में पहचानना चाहिए संकीर्णता के लिए प्रेमी की मानसिकता नहीं हो सकती –

'तनहा न उसे अपने दिले तंग में पहचान।

---

[94] यजदानी, डॉ, कौसर, सूफी दर्शन एवं सूफी साधना, जेन्युइन पब्लिकेशन्स एंड मीडिया प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1987, पृष्ठ संख्या-173

[95] https://www.rekhta.org/couplets/haqiiqii-ishq-kii-ishq-e-majaazii-pahlii-manzil-hai-unknown-couplets?lang=hi

[96] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-103

हर आन में हर बात में, हर ढंग में पहचान॥

आशिक़ है तो दिलबर को हर एक रंग में पहचान॥'[97]

सूफी-दर्शन में प्रेम को मानव जीवन की आत्मा माना गया है इसके बिना जीवन में कोई आनंद शेष नहीं रह जाता है। व्यक्ति को केवल प्रेम करना चाहिए शेष सांसारिकता को खुदा पर छोड़ देना चाहिए नज़ीर लिखते हैं कि इस सांसारिकता के रहस्य को समझने में अरस्तू, लुक़मां और प्लेटो तक ने सिर धून लिए –

'अरस्तू, लुक़मां और फ़लातूं, हर एक सर को पटक गया है।

यह वह तिलिस्मात हैं कि जिनकी, न इब्तिदा है न इन्तिहा है।

पड़े भटकते हैं लाखों दाना, करोड़ों पण्डित हज़ारो स्याने॥

जो खूब देखा तो यार आ़खिर, ख़ुदा की बातें ख़ुदा ही जाने॥'[98]

नज़ीर की नज़्मों में सांसारिकता और उसकी नश्वरता का भी दर्शन मौजूद है उन्होंने दुनिया को कहीं बदले की जगह बताया है तो कहीं धोखे की टट्टी बताया है। नज़ीर लिखते हैं कि इस दुनिया की तमाम चीजें और रिश्ते-नाते सब भ्रम है, कुछ वास्तविक नहीं है बल्कि सब धोखा –

'यह पैंठ अजब है दुनियां की, और क्या क्या जिन्स इकट्ठी है।

यां माल किसी का मीठा है, और चीज़ किसी की खट्टी है।

कुछ पकता है कुछ भुनता है, पकवान मिठाई पट्टी है।

जब देखा खूब तो आ़खिर को, न चूल्हा भाढ़ न भट्टी है।

गुल शोर बबूला आग हवा और कीचड़ पानी मट्टी है।

हम देख चुके इस दुनियां को, यह धोके की सी टट्टी है।'[99]

---

[97] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या- 196

[98] वही, पृष्ठ संख्या-119

[99] वही, पृष्ठ संख्या -106

नज़ीर का दुनिया को देखने का नजरिया इस्लामी दर्शन से प्रभावित है। क़ुरआन दुनिया सांसारिक जीवन को धोखे की टट्टी मानता है। टट्टी एक तरह की मेड़ होती है जो ग्रामीण क्षेत्रों में खेतों या बाड़ी (घर का बागीचा) के आस-पास दीवार के रूप में उपयोग में लायी जाती है। यह बांस की बनी होती है और जानवरों को भरमाने के लिए लगायी जाती है। इस कविता में नज़ीर दुनिया को उसी टट्टी की तरह बता रहे हैं जो मनुष्य को भरमाने का काम करती है। [100] डॉ. याजदानी ने इमाम ग़ज़ाली के हवाले से बताया है कि इस्लाम में दुनिया को अल्लाह की, अल्लाह के दोस्तों की, और अल्लाह के दुश्मनों की दुश्मन कहा गया है। चूंकि वह अल्लाह के बन्दों का मार्ग बाधित करती है उनके बन्दों को भ्रमित करती है तथा अल्लाह के दुश्मनों को मायाजाल में फँसाए रखती है। सूफियों ने भी दुनिया के प्रति अनासक्ति का भाव यहीं से ग्रहण किया है। अपनी दूसरी कविता में नज़ीर दुनिया को 'बदले की जगह' कहते हैं अर्थात यह दुनिया ऐसी है कि यहाँ मनुष्य जैसा काम करेगा उसे वैसा ही भोगना पड़ेगा। यह संसार सौदेबाज़, तार्किक और इंसाफ परस्त है –

'है दुनियां जिसका नाम मियां, यह और तरह की बस्ती है।
जो महंगों को तो महंगी है, और सस्तों को यह सस्ती है।
यां हर दम झगड़े उठते हैं, हर आन अदालत बस्ती है।
गर मस्त करे तो मस्ती है, और पस्त करे तो पस्ती है।
कुछ देर नहीं अंधेर नहीं, इंसाफ और अदल परस्ती है॥
इस हाथ करो उस हाथ मिले, यां सौदा दस्त ब दस्ती है॥'[101]

इसके साथ ही नज़ीर कहते हैं कि यह 'कलयुग' नहीं 'कर युग' है अर्थ यह समय कर्म प्रधान है। यहाँ नेकी के बदले नेकी ही मिलेगी और किसी का नुकसान करने पर नुकसान ही मिलेगा –

---

[100] यजदानी, डॉ, कौसर, सूफी दर्शन एवं सूफी साधना, जेन्युइन पब्लिकेशन्स एंड मीडिया प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली,1987, पृष्ठ संख्या-244

[101] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-104

‘दुनिया अज़ब बाज़ार है, कुछ जिन्स यां की सात ले।

नेकी का बदला नेक है, बद से बदी की बात ले॥

मेवा खिला, मेवा मिले, फल फूल दे फल पात ले।

आराम दे आराम ले, दुख दर्द दे, आफ़ात ले॥

कल जुग नहीं, कर जुग है यह, यां दिन को दे और रात ले।

क्या ख़ूब सौदा नक़्द है, इस हात दे उस हात ले॥’[102]

कलयुग की अवधारणा हिन्दू दर्शन में महायुग के अंतिम चरण के रूप में ग्रहण की गयी है जो एक पतनशील युग, जहाँ कोई जीवन मूल्य नहीं है। नज़ीर ने कलयुग की अवधारणा संभवतः वहीं से ली होगी किन्तु उनकी कलयुग के प्रति वह दृष्टि नहीं है जैसी हिन्दू दर्शन में है। नज़ीर कलयुग को उस रूप में नहीं देखते वे कलयुग को ‘कर-युग’ के रूप में देखते हैं, यहाँ कुछ भी केवल भाग्य पर निर्भर नहीं है बल्कि कर्म पर निर्भर है। जो व्यक्ति जैसा कर्म करेगा उसे वैसा ही फल मिलेगा। अतः कलयुग के लिए जो कहा जाता है ‘हंस चुगेगा दाना तिनका कौआ मोती खायेगा’ ये एक तरह से कलयुग की भाग्यवादी व्याख्या है और इसके अनुसार कलयुग बुरे और खराब लोगों का समय है जबकि नज़ीर इसे अक्लमंद और अच्छे लोगों के समय के रूप में देखते हैं इसे गफलत की जगह के रूप में नहीं देखते। नज़ीर का ‘कर-युग’ श्रम प्रधान समाज की ओर इशारा करता है जो उनकी आधुनिक दृष्टि को दर्शाता है।

नज़ीर की कुछ कविताएँ जैसे ‘फ़ना’, ‘मौत का धड़का’, ‘मौत की फिलासफी’, ‘बंजारानामा’, ‘तन का झोपड़ा’ आदि में उनके मृत्यु-बोध का परिचय है। सूफियों के दर्शन में भी मृत्यु को लेकर एक व्यापक चिंतन मिलता है जो प्रायः इस्लामी दर्शन से प्रभावित है। कुरआन के अनुसार ‘जो इस धरती पर है, विनाशमान है और तुम्हारे रब का प्रतापमान एवं उदार स्वरूप शेष रहेगा’[103] सूफियों ने

[102] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-110

[103] याजदानी, कौसर, जेन्युइन पब्लिकेशन्स एंड मीडिया प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1987, पृष्ठ संख्या-102

संसार को फानी कहा है चूंकि दुनिया में जो कुछ है सब फना हो जाएगा अर्थात समाप्त हो जाएगा और अंत में केवल अल्लाह का नाम ही शेष रह जाएगा। नज़ीर की एक नज़्म इसी बात की ओर संकेत करती है ‘आखिर वही अल्लाह का एक नाम रहेगा’ वे लिखते हैं कोई ज़रदार हो या कोई बे-ज़र हो सबका अंत तय है। अंत में केवल अल्लाह का नाम ही शेष रह जाएगा। चूंकि मनुष्य ख़ाक से बना है अतः अंत में उसे ख़ाक में ही मिल जाना है –

‘दुनिया से जबकि अम्बिया और औलिया उठे।
अजसाम पाक उनके इसी ख़ाक में रहे।
रूहें हैं खूब हाल में, रूहों के हैं मजे।
पर जिस्म से तो अब यही, साबित हुआ मुझे।
जो ख़ाक से बना है, वह आ़खिर को ख़ाक है॥’[104]

इन पंक्तियों में नज़ीर का यथार्थवादी दृष्टिकोण देखा जा सकता है।

‘मौत का धड़का’ में नज़ीर का मृत्यु-बोध अभिव्यक्त होता है। मृत्यु मनुष्य का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्रकृति का अंतिम सत्य है। प्रकृति की हर-एक चीज़ एक दिन समाप्त हो जाती है। मनुष्य भी समाप्त हो जाता है। तमाम दर्शन मृत्यु के सत्य को स्वीकार करते हैं। सूफी दर्शन में इस संसार को फानी कहा गया है जिसका अर्थ नाशवान या नश्वर अर्थात यह सम्पूर्ण संसार नश्वर है। सूफियों का यह मृत्यु बोध भी कुरआन से ही प्रभावित है। कुरआन की एक आयत कहती है –

‘जो कुछ तुम्हारे पास है, वह समाप्त हो जाएगा और जो कुछ अल्लाह के पास है, वह बाक़ी रहने वाला है।’[105]

---

[104] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-133

[105] (पुनरुधृत) क़ुरआन : अन-नह्ल : 96, याज़दानी, कौसर, सूफ़ी दर्शन एवं साधना, जेन्युइन पब्लिकेशन्स एंड मीडिया प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1987, पृष्ठ संख्या-102

अब नज़ीर की ये पंक्तियाँ देखिए –

‘जो मरना-मरना कहते हैं वह मरना क्या बतलाये कोई।
वां ज़ाहिर बाहें खोल मिले सब अपनी अपनी छोड़ दुई।
सीं डाली आंख दो रंगी की जब यक रंगी ने मार सुई।
नामर्दों का ग़ुलशोर रहा ना औरत की कुछ आह उई।
माटी की माटी, आग अगन, जल नीर, पवन की पवन हुई।
अब किससे पूछे कौन मुआ? और किससे कहिये कौन।।’[106]

xx xx

‘दुनियां में कोई ख़ास न कोई आम रहेगा।
न साहिबे मक़दूर न जाकाम रहेगा॥
ज़रदार न बेज़र न बद अंजाम रहेगा।
शादी न ग़मे गर्दिशे अय्याम रहेगा।
न ऐश न दुख दर्द न आराम रहेगा॥
आख़िर वही अल्लाह का एक नाम रहेगा॥’[107]

पहले पद में नज़ीर का मृत्यु-बोध लक्षित किया जा सकता है। नज़ीर कहना चाह रहे हैं सब यथावत हो जाएगा। दर्शन की भाषा में कहें तो सब ख़ाक में मिल जाएगा। वहीं दूसरे पद में नज़ीर कह रहे हैं कुछ शेष नहीं रहेगा केवल अल्लाह का नाम रह जाएगा। अतः स्पष्ट है कि नज़ीर का मृत्युबोध सूफियों

[106] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-141
[107] वही, पृष्ठ संख्या-179

और इस्लाम का मृत्युबोध है। नज़ीर की सबसे लोकप्रिय कविता 'बंजारानामा' भी इसी मृत्युबोध से प्रेरित कविता है –

'टुक हिर्सो-हवा को छोड़ मियां, मत देस विदेश फिरे मारा।
क़ज़्ज़ाक़ अजल का लूटे है, दिन रात बजाकर नक़्क़ारा।
क्या बधिया, भैंसा, बैल, शुतर क्या गोनें पल्ला सर भारा।
क्या गेहूं, चावल, मोंठ, मटर, क्या आग, धुंआ और अंगारा।
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा॥'[108]

'सब ठाठ पड़ा रह जाएगा' इस बात से भली-भांति परिचित हैं इसीलिए नज़ीर न तो स्वयं किसी तरह की सम्पत्ति एकत्र करते हैं और न इसकी सलाह देते हैं। इस संदर्भ में नज़ीर की कविता 'ज़र' द्रष्टव्य है –

'ज़र की जो मुहब्बत तुझे पड़ जाएगी बाबा!
दुख उसमें तेरी रूह बहुत पायेगी बाबा!'[109]

## 3.4 नज़ीर की कविता में आधुनिक चेतना

कालक्रम की दृष्टि से भले ही नज़ीर रीतिकाल के भीतर दर्ज किए जाते हों किन्तु रचनात्मकता और विचार से नज़ीर अपने समय से बहुत आगे ठहरते हैं। नज़ीर ने अपनी कविताओं में उस जीवन को महत्व दिया है जिसे उन्होंने देखा और जीया, कपोल कल्पना में उनका विश्वास नहीं था। आधुनिकता के केंद्र में वैज्ञानिकता है और वैज्ञानिकता बताती है आँखों-देखी चीजों पर विश्वास किया जाए। कबीर भी आँखों-देखी बात पर बल देते हैं इसलिए कबीर को भी आधुनिक कवि माना जाता है। अपने समय

[108] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-176
[109] वही, पृष्ठ संख्या-168

के अन्य कवियों की भाँति नज़ीर अपनी रचनात्मक प्रतिभा को किसी परंपरा में बंधने नहीं दिया। नज़ीर ने भले ही दरबारी कवि होने से इनकार कर दिया था किन्तु दरबार के अन्दर की राजनीति से वे अपरिचित नहीं थे और संभवतः इसीलिए दरबारी नहीं थे। तख़्त के षड्यंत्रों और उससे उत्पन्न दरबारी कलह, मुग़ल शासन का ह्रास नज़ीर की कविताओं में बखूबी दर्ज हुए हैं-

'होती है जर के वास्ते हरज़ा चढ़ाइयाँ।
कटते हैं हाथ पाँव गले और कलाइयाँ।
बंदूकें और हैं कहीं तोपें लगाइयाँ।
कुल जर की हो रही है जहाँ में लड़ाइयाँ।
जो है सो हो रहा है सदा मुब्तिलाए जर।
हर इक यही पुकारे है दिन रात हाय! जर।।'[110]

राजनीतिक अस्थिरता के कारण समाज को नादिर शाह, अहमदशाह अब्दाली, मराठों और जाटों के आक्रमण का दंश दिल्ली और आगरा की जनता को झेलना पड़ा। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के बाद आगरा की जो दर्दनाक स्थिति थी उसे नज़ीर ने 'शहर-ए-आशोब' में अभिव्यक्त किया है-

'मारे हैं हाथ हाथ पै सब याँ के दस्तकार।
और जितने पेशेवर हैं सो रोते हैं ज़ार ज़ार।
कुछ एक दो के काम का रोना नहीं है यार।
छत्तीस पेशे वालों के हैं कारोबार बंद।'[111]

जाटों के राजा सूरजमल के बाद आगरा पर जब मराठों का अधिकार रहा तब वहाँ की स्थिति बहुत ख़राब थी। बेतुके कर और रिश्वतखोरी के रूप में भ्रष्टाचार अपने चरम पर था तब नज़ीर लिखते हैं –

'अपने नफ़ा के वास्ते मत और का नुक़्सान कर।
तेरा भी नुक़्सां होवेगा, इस बात पर तू ध्यान कर॥'[112]

---

[110] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-258
[111] वही, पृष्ठ संख्या-486
[112] वही, पृष्ठ संख्या-112

परिणामतः सबके रोज़गार ठप हैं, जिनके पास उपार्जन के हज़ार हुनर थे आज वे सब एक कौड़ी के मोहताज हैं-

'अब आगरे में जितने हैं सब लोग है तबाह।
आता नज़र किसी का नहीं एक दम निबाह।
माँगो अज़ीज़ो ऐसे बुरे वक़्त से पनाह।
वह लोग एक कौड़ी के मोहताज अब हैं आह।
कस्बो हुनर के याद है जिनको हज़ार बंद।।'[113]

नज़ीर का मिजाज़ अपने दौर के कवियों से कुछ भिन्न था। धर्म की ताक़त के बरअक्स पूँजी की ताक़त पहले ही भाँप ली थी। मार्क्स ने 19 वीं सदी में आर्थिक आधार पर जो समाज के दो वर्ग का सिद्धांत दिया वह सिद्धांत नज़ीर के यहाँ उनसे पहले मौजूद है। नज़ीर ने मार्क्स से बहुत पहले पैसे की ताक़त को अपनी कविता में रेखांकित किया है-

'पैसा जो हो तो देव की गर्दन को बाँध लाये।
पैसा न हो तो मकड़ी के जाले से खौफ़ खाये।।'[114]

उस दौर का समाज दो वर्गों में विभक्त है। एक शासक वर्ग है जिसमें बादशाह, मनसबदार, जागीरदार, सेना के बड़े कर्मचारी और व्यापारी आदि जिसे उच्च वर्ग या संपन्न वर्ग कहा जा सकता है तथा दूसरा शासित वर्ग जिसमें किसान, मजदूर, छोटे व्यापारी आदि निम्न या आभावग्रस्त वर्ग-

'कौड़ी ही चाहती है सदा बादशाह को।
कौड़ी ही थाम लेती है, फोजो सिपाह को॥
लेकर छड़ी रूमाल गदा भी निबाह को।
फिरता है हर दुकान पै कौड़ी की चाह को॥
कौड़ी के सब जहान में, नक़्शों नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फिर तीन-तीन हैं॥'[115]

113 मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-485
114 वही, पृष्ठ संख्या-250
115 वही, पृष्ठ संख्या-243

नज़ीर ने ‘पैसा’, ‘कौड़ी’, ‘रूपये की फिलासफी’ और ‘ज़र’ में पूँजी के महत्व का रेखांकन किया है। नज़ीर कहते हैं ‘आलम में नज़ीर इश्रतों फ़रहत है इसी से’[116]।

नज़ीर के समकालीन प्रायः कवियों की रचनाओं में शासक वर्ग की ही झलक मिलती है। नज़ीर का संबंध आभावग्रस्त वर्ग से था। वस्तुतः उस दौर के कवि भी दरबारों में ही रहते थे अतः उनकी रचनाएँ जन-सामान्य के बीच कैसे रह सकती थी। जिनका पेट रोटी से, नाक तलक भरा है वे भला भूख की कीमत क्या जाने। उन्हें चाँद और सूरज में प्रियतम नज़र आ सकते हैं। किन्तु जो रोटी के टुकड़े-टुकड़े का मोहताज है उसके लिए चाँद और सूरज में रोटी का बिंब ही नज़र आएगा। नज़ीर अनुभव के कवि हैं। वे अनुभूत सत्य को अपने साहित्य में जगह देते हैं। भूख जीवन की सच्चाईयों में से एक है। मध्यकालीन कविता में मृत्यु जीवन का सबसे बड़ा सच है किन्तु आधुनिक कविता में पेट का सच मृत्यु के सच से ज्यादा महत्वपूर्ण है। नज़ीर का ध्यान इस ओर है-

‘हर आन टूट पड़ता है रोटी के ख़्वान पर।
जिस तरह कुत्ते लड़ते हैं एक उस्तुख़्वान पर॥
वैसा ही मुफ़्लिसों को लड़ाती है मुफ़्लिसी॥’[117]

शाही कवियों की रचनाओं में यदि शराब, साक़ी और मयखाने का वर्णन मिलता है तो इसमें आश्चर्य कुछ नहीं, उनका वातावरण ही वह था। रीतिकालीन कवियों का ध्यान भी अलंकारों और नायिका भेद की ओर ही था। वस्तुतः इन रचनाकारों के अनुसार काव्य मनोरंजन का ही माध्यम था। नज़ीर ने इन दरबारी और संपन्न कवियों को मुफ़लिस के दुःख के बारे में बताया, किन्तु नज़ीर ने कविता को एक ज़िम्मेदारी समझा है। नज़ीर ने गरीबी के बारे में लिखा उन्होंने ‘हिजड़े’ कविता लिखी और उन्हें सच्चे मन और आत्मा वाला बताया। थर्ड जेंडर को साहित्य क्या समाज का हिस्सा बनने में भी बहुत समय लगा। आज 21 वीं सदी में भी इन्हें बहुत सहजता के साथ

---

[116] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-254
[117] वही, पृष्ठ संख्या-260

स्वीकार नहीं किया जाता है किन्तु नज़ीर ने 18 वीं शताब्दी में ही इन्हें अपनी कविता में स्थान दिया था और बहुत आदर से याद किया है। नज़ीर ने उन्हें खुदा रूप कहा है। नज़ीर लिखते हैं-

‘अक्सर उन्हों के भेस में साहिब कमाल हैं॥
जो कुछ मुराद मांगो यह बर लावें हीजड़े॥’

xxxx

‘उसके बड़े नसीब जहां जावें हीजड़े॥’[118]

तृतीय लिंग पर उस समय विचार करना और सम्मान पूर्वक विचार करना नज़ीर जैसे लोक चेतस कवि के लिए ही संभव था।

नज़ीर मानवीय चेतना के कवि हैं उनकी कविताओं ‘आदमीनामा’ में मनुष्यता के प्रति उनका आग्रह स्पष्ट देखा जा सकता है। दुनिया सब अंततः मनुष्य ही है –

‘दुनियां में बादशाह है सो है वह भी आदमी।
और मुफ़्लिसो गदा है सो है वह भी आदमी॥
जरदार बेनवा है, सो है वह भी आदमी।
नैंमत जो खा रहा है, सो है वह भी आदमी॥
टुकड़े चबा रहा है, सो है वह भी आदमी॥’[119]

मानवीय चेतना नज़ीर को आधुनिकता से जोड़ती है। आधुनिकता के केंद्र में मनुष्य है। मनुष्य की निजी दुनिया है जो विराट सत्ता की आस्था को खारिज करके तर्कों और प्रश्नों के माध्यम से संचालित होती है।

---

[118] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या- 508
[119] वही, पृष्ठ संख्या-239

### 3.5 नज़ीर की रचनाधर्मिता और रीतिकालीन सौन्दर्यबोध

प्रत्येक रचनाकार किसी न किसी रूप में अपने समय से प्रभावित रहता है। कबीर जैसा विद्रोही कवि भी स्त्री के प्रति अपने विचारों में अपने समय के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका। नज़ीर भी अपने समय के प्रभाव से नहीं बच पाए हैं। नज़ीर की रचनाओं में प्रेम और श्रृंगार का चित्रण बहुत जगह पर मिलता है। नज़ीर का समय रीतिकाल का समय है और रीतिकाल का सौन्दर्यबोध एक पुरुष वर्चस्ववादी सौन्दर्यबोध से प्रेरित है जो स्त्री को वस्तु की तरह मानता है, एक भोग की वस्तु। नज़ीर की रचनाओं में भी स्त्री इसी रूप में मौजूद है। हालांकि एक जगह नज़ीर स्त्री पुरुष की बराबरी की बात करते हैं। आदमीनामा की यह पंक्ति देखी जा सकती है –

‘यां आदमी ही नार है और आदमी ही नूर।
कुल आदमी का हुस्नो क़बह में है यां ज़हूर।
शैतां भी आदमी है जो करता है मक्रो जूर।
और हादी रहनुमा है सो है वह भी आदमी॥’[120]

यहाँ नज़ीर को इस बात का श्रेय ज़रूर जाता है कि संभवतः पहली बार उन्होंने स्त्री को मनुष्य तो समझा। अन्यथा भक्तिकाल में तो स्त्री को माया, ठगिनी, ढोल आदि की ही संज्ञा दी गयी। किन्तु नज़ीर की समग्र कविताओं को देखा जाए तो स्त्री के दो ही रूप मिलते हैं, एक भोग्या रूप और दूसरा प्रेमिका रूप। स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व नज़ीर के यहाँ नहीं है। इस दृष्टि से नज़ीर रीतिकाल की सीमा से बाहर नहीं निकल पाए। नज़ीर की कविता कोठे, कोठे पर, रात अंधेरी, शब्-ए-ऐश, लूली पीर, जवानी, जवानी के मज़े आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं जहाँ स्त्री का विलास रूप देखने को मिलता है-

‘हिजाब दूर हुआ दौरे जाम की ठहरी।
लगीं निकलने जो कुछ हसरतें थीं दिल में भरी।

[120] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-239

बहुत दिनों से इसी बात की तमन्ना थी।

मकां जो ऐश का हाथ आया ग़ैर से ख़ाली।

पटे के चलने लगे फिर तो हाथ कोठे पर॥'[121]

उपर्युक्त पद नज़ीर की रचना 'कोठे पर' का है। इस पद में अंतिम दो पंक्तियाँ गौर करने लायक है, यह पंक्तियाँ नज़ीर का स्त्री के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट कर देती हैं। एक स्त्री को ऐश के मकान के रूप में चित्रित करना निश्चित रूप से नज़ीर पर रीति-कालीन सौन्दर्यबोध के प्रभाव को उजागर करता है। नज़ीर की रचनाओं में बार-बार 'वस्ल' की रात का वर्णन आया है और उसके वर्णन में नज़ीर इतने डूब गए हैं कि वह मांसल हो उठा है –

'तनते हैं अगर ऐंठ के चलते हैं अज़ब चाल।

जो पांव कहीं, राह कहीं, सैफ़ कहीं ढाल॥

खींचे हैं कहीं बाल, कहीं तोड़ लिया गाल।

चढ़ बैठे कहीं, हाथ कहीं मुंह को दिया डाल॥

इस ढब के मज़े रखती है और ढंग जवानी।

आशिक़ को दिखाती है अज़ब रंग जवानी॥'[122]

स्त्री के प्रति नज़ीर की यह वस्तुवादी दृष्टि बताती है नज़ीर अपने समय के पुरुषवादी वर्चस्ववादी मानसिकता से मुक्त नहीं हुए वस्तुतः रीतिकालीन समाज सामंती समाज था अतः पूरे रीतिकाल की रचनाओं में बहुत जगह पर संयोग श्रृंगार का चित्रण मांसल हो गया है। उदहारण के लिए बोधा की ये पंक्तियाँ देखिये –

'कुच के छुवत झुक झहरात

---

[121] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-546

[122] वही, पृष्ठ संख्या-285

तकिया ओट सरकत जात।'[123]

XX XX

'माधो गहि बाल रिसाय

जंघा भुजा ऊपर लाय'[124]

देव के यहाँ  देखिये –

'काम अंधकारी  जगत, लखै न रूप कुरूप ।

हाथ लिए डोलत फिरै, कामिनि छरी अनूप ॥

तातैं कामिनि एक ही, कहन सुनन को भेद ।

राचैं पागै प्रेम रस, मेटै मन के खेद ॥'[125]

देव की ये पंक्तियाँ वस्तुतः रीतिकाल के सौन्दर्यबोध की स्पष्ट झलक मिलती है। नज़ीर भी इसी समाज से आते हैं अतः वे भी इस विलासी मनोवृत्ति से मुक्त नहीं हो पाए हैं –

'गर रात किसी पास रहे ऐश में ग़ल्तां।

और वां से किसी और के मिलने का हुआ ध्यां॥

घबरा के उठे जब तो गिरे पांव पर हर आं।

कहती है 'हमें छोड़ के जाते हो किधर जां' ॥

इस ढब के मज़े रखती है और ढंग जवानी।

आशिक़ को दिखाती है अज़ब रंग जवानी॥'[126]

XX XX

---

[123] (पुनरुधृत) अवस्थी, डॉ. मोहन, हिंदी-रीतिकविता और समकालीन उर्दू-काव्य, सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, 1978, पृष्ठ संख्या- 365

[124] वही, पृष्ठ संख्या- 365

[125] http://streekaal.com/2015/08/blog-post_17-3/

[126] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-284

'हमें एक दो घड़ी के वास्ते दूल्हा दिला दो तुम।

जो कुछ लंहगे के अन्दर चीज़ है पिनहान समधिन की॥

नज़ीर अब आफ़री है यार तेरी तब्अ को हर दम।

कही तारीफ़ तूने ख़ूब आलीशान समधिन की॥'[127]

इन पंक्तियों में नज़ीर की भोगवादी मनोवृत्ति को सहज ही लक्षित किया जा सकता है। नज़ीर की कविताओं से साफ़ पता चलता है कि उनका वैश्यालय आना जाना लगा रहता था। ज़िंदगानी-ए-बेनज़ीर में प्रो. शहबाज़ ने बताया है कि नज़ीर का मोती नाम की एक वेश्या से प्रेम था अतः 'मोती' नाम से उन्हीं के लिए लिखी थी।

नज़ीर की रचनाओं में स्त्री का जो दूसरा रूप मिलता है वह प्रेमिका का है। इस रूप की स्त्री शोख, चंचल और सितमगर है जिसे देखते ही दिल गिरफ्तार हो जाता है। नज़ीर ने प्रेमिका को बहुत दार्शनिक या पारलौकिक नहीं दिखाया है बल्कि नज़ीर की प्रेमिका बहुत सांसारिक है। जिसके दीदार की ख्वाहिश लिए नज़ीर परेशान रहते हैं –

'देखी है तुम्हारे जो चेहरे की झमक ऐ जां।

दिल सीने में तड़पे है जो देख ले फिर एक आँ॥

है हमको बहुत मुश्किल और तुमको बहुत आसाँ।

है अर्ज़ यही अब, तो, ऐ बादशाहे ख़ूबाँ; ॥

फिर एक नज़र अपने मुखड़े को दिखा दीजे॥'[128]

प्रेमिका के अदा की एक झलक मिलते ही नज़ीर का दिल गिरफ्तार हो गया और किसी साधारण प्रेमी की भाँति अपनी प्रेमिका की एक झलक पाने को अनुनय-विनय करते हैं। न मिलने पर 'गिला' भी करते हैं –

---

[127] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-506

[128] वही, पृष्ठ संख्या-662

‘उस शोख के सितम का गिला आह क्या करूँ।

तन सूख कर हुआ है मेरा काह क्या करूँ॥

बहते हैं अश्क शामो सहर गाह क्या करूँ।

मिलता नहीं है तो भी वह गुमराह क्या करूँ॥

फुर्सत तो साँस की भी नहीं आह! क्या करूँ।

क्या बेबसी है ऐ मेरे अल्लाह! क्या करूँ॥’[129]

वस्तुतः नज़ीर के यहाँ श्रृंगार के दोनों रूप मौजूद हैं। संयोग श्रृंगार का भी वर्णन है और वियोग का भी वर्णन मिलता है। ‘ज़ुल्फ़ के फंदे’, ‘गिरफ्तारी-ए-दिल’, ‘शौक-ए-दीद’, ‘दिलबरी’, ‘चाँदनी रात’, ‘मोती’ आदि रचनाएँ संयोग श्रृंगार की रचनाएँ हैं तथा ‘गिला’, ‘अलफिराक़’, ‘सोज़े फिराक़’ आदि वियोग श्रृंगार के उदाहरण हैं। इसके साथ ही नज़ीर ने ‘परी का सरापा’ शीर्षक से नखशिख वर्णन भी किया है।

साक़ी और मय भी नज़ीर के यहाँ आये हैं। नज़ीर जब ग़ज़ल लिखते हैं तो वे प्रायः उर्दू की पारंपरिक शैली से अलग नहीं हो पाते। उदाहरण के लिए –

‘दूर से आये थे साक़ी सुनके मयख़ाने को हम ।

बस तरसते ही चले अफ़सोस पैमाने को हम ।।

मय भी है, मीना भी है, साग़र भी है साक़ी नहीं।

दिल में आता है लगा दें, आग मयख़ाने को हम।।’[130]

---

[129] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-671

[130] वही, पृष्ठ संख्या-650

# चतुर्थ अध्याय

# नज़ीर की काव्य-भाषा

<u>चतुर्थ अध्याय</u>

# नज़ीर की काव्य-भाषा

प्रस्तुत अध्याय में हम नज़ीर की काव्य भाषा पर बात करते हुए यह जानने का प्रयास करेंगे कि एक रीतिकालीन कवि जो स्वयं अरबी-फारसी का विद्वान है, अपनी कविता के लिए एक बाज़ारू कही जाने वाली भाषा का चुनाव करता है; वह भी ऐसे दौर में जब भारत के शाही दरबारों में फारसी कविता और फारसी के कवियों को विशेष संरक्षण प्राप्त था। एहतेशाम हुसैन ने उर्दू साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में लिखा "...सांस्कृतिक क्षेत्रों में फ़ारसी इस प्रकार छायी हुई थी कि लोग बोलचाल की भाषा को साहित्य में लाने में सकुचाते थे।"[131] नज़ीर की भाषा-दृष्टि हमें भक्तिकाल की याद दिलाती है जहाँ सूर, तुलसी जैसे संस्कृत के विद्वान कवियों ने संस्कृत के बरअक्स लोक अथवा जनपदीय भाषा में अपना काव्य रचा। वस्तुतः यह संस्कृत प्रतिरोध की परंपरा बुद्ध से शुरू हुई थी, जिन्होंने उपदेश देने के लिए संस्कृत की बजाए जन भाषा 'पाली' में दिया। इसका व्यापक प्रभाव भक्तिकाल में देखा गया। भक्तिकालीन कवियों ने भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए जनभाषा को चुना। भक्तिकालीन कवियों इस भाषा दृष्टि के पीछे संभवतः उनके पाठकों का चुनाव था। उनका उद्देश्य जन-सामान्य तक पहुँचना रहा होगा इसी उद्देश्य की पूर्ति उन्होंने लोक-भाषा या प्रचलित जनभाषा का प्रयोग किया। संस्कृत बरअक्स लोकभाषा का प्रयोग दरअसल कई बातों की ओर संकेत करता है। एक ओर यह सामंती व्यवस्था के विरुद्ध लोक व्यवस्था की प्रतिस्थापना थी; दूसरी ओर शास्त्रीय भाषा के विरुद्ध मातृभाषाओं का संघर्ष। इस काल के कवियों ने मातृभाषा के महत्व को समझा। मातृ-भाषाओं के प्रति यह ज़िम्मेदारी विद्यापति से लेकर मीराबाई और बाद के कवियों ने भी निभायी। इसके साथ ही भक्तिकालीन संस्कृतियों को पास लाने में भी

[131] हुसैन, सैयद एहतेशाम, उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-39

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कबीर का खिचड़ी भाषा का प्रयोग अज्ञानवश नहीं है, ज्यादा से ज्यादा लोगों तक अपनी बात पहुंचाकर, उन्हें एक करने का प्रयास है। इसीलिए कबीर पंजाबी, राजस्थानी, ब्रज, अवधी आदि कई भाषाओं की शब्दावली को एक साथ लाते हैं।

वस्तुतः जनभाषा के प्रति यह लगाव हिंदी कवियों में आरंभिक काल से ही मौजूद है। सिद्धों-नाथों की रचनाओं का जन-सामान्य के बीच लोकप्रियता का यही कारण था। वास्तव में अपभ्रंश उस समय की जन-भाषा थी। भरतमुनि ने तो अपभ्रंश को 'देशभाषा' का ही संबोधन दिया।[132] आचार्य शुक्ल ने भी अपभ्रंश के लिए 'लोकप्रचलित काव्यभाषा' शब्द का प्रयोग किया। सिद्धों और नाथों की रचनाओं में हमें यही लोकप्रचलित भाषा मिलती है जिसकी बात आचार्य शुक्ल कर रहे हैं, जिसे अपभ्रंश कहा गया, चूंकि ये संस्कृत से इतर थी। देशी भाषा के प्रति यही लगाव हम विद्यापति के यहाँ भी देख सकते हैं। यद्यपि उनके यहाँ संस्कृत की बहुत सी रचनाएँ उपलब्ध हैं किन्तु फिर भी देशी भाषा के प्रति उनका प्रेम इन पंक्तियों में सहज ही लक्षित किया जा सकता है –

'देसिल बअना सब जन मिट्ठा। तें तैंसन जंपओं अवहट्ठा'

अर्थात देशी भाषा सब को मीठी लगती है। इसी देशी भाषा की मिठास ने खुसरो तक को प्रभावित किया। खुसरो मूलतः फ़ारसी के कवि थे किन्तु वे भी अपने आस-पास की बोलचाल की भाषा से भली-भांति परिचित थे, उनकी परवर्ती रचनाओं में बोलचाल की भाषा का व्यापक प्रभाव दिखता है और हम सब जानते हैं कि खुसरो के यहाँ ही पहली बार हमें खड़ी-बोली का बहुत निखरा हुआ रूप दिखता है। खुसरो के हिंदी प्रेम का अंदाज़ा इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है-

[132] 'भरत मुनि(विक्रम तीसरी शताब्दी) ने 'अपभ्रंश' नाम न देकर लोकभाषा को 'देशभाषा' ही कहा है' हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या-25

"मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ। अगर तुम वास्तव में मुझसे जानना चाहते हो तो हिन्दवी में पूछो। मैं तुम्हें अनुपम बातें बता सकूँगा"[133]

वस्तुतः भक्तिकाल में जनपदीय भाषाओं का उभार नज़र आता है वह उभार एका-एक नहीं था अपितु उसकी सुगबुगाहट यहीं से शुरू हो गयी थी। कबीर ने तो भाषा के तमाम बंधनों को दरकिनार किया। कबीर ने संस्कृत की शास्त्रीयता को सीधे-सीधे ख़ारिज किया-

'संसकिरत है कूप – जल, भाषा बहता नीर'

कबीर का विश्वास प्रवाहमान भाषा पर था। संस्कृत चूंकि तमाम व्याकरणिक बंधन लिए हुए थी अतः वे संस्कृत को कुएं के जल के समान स्थिर मानते हैं। कबीर ने भाषा को बहता नीर माना और पंजाबी, राजस्थानी, ब्रज, भोजपुरी, हिंदी-उर्दू आदि तमाम भाषा व बोली के शब्दों का प्रयोग किया। कबीर की कविता के व्यापक भूगोल का मूल कारण यही है, आज भी उत्तर भारत के किसी देहात में कबीर के पद गाने वाला कोई न कोई मिल जाएगा। चाहे वह निरक्षर ही क्यों न हो और इस निरक्षर आदमी तक पहुँचने के लिए ही कबीर ने अपनी कविता के लिए इस भाषा को चुना। जिसे आज हम निरक्षरों की भाषा कहते हैं और संभवतः इसी आधार पर हम कबीर को भी निरक्षर घोषित कर देते हैं। वास्तव में पूरे भक्ति आन्दोलन का उद्देश्य कविता को उस अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाना रहा होगा और भक्तिकाल के तमाम कवियों का उद्देश्य जन सामान्य तक पहुँचना था इसीलिए मीरा, तुलसी, जायसी आदि सारे कवियों ने संस्कारित भाषा की बजाए जन-भाषा को महत्व दिया।

यही शास्त्र बनाम लोक की लड़ाई हमें नज़ीर के यहाँ नज़र आती है। फ़ारसी को छोड़कर हिंदी अपनाने के पीछे नज़ीर का भी यही उद्देश्य था। उनका पाठक वर्ग दरबारों में नहीं था अपितु दरबारों के बाहर था यही कारण है कि उन्होंने दरबार को तो ठुकराया ही दरबारी भाषा को भी ठुकराया। नज़ीर

---

[133] https://plus.google.com/112151937244192952855/posts/8ApgHGoyha7

फ़ारसी भाषा के अच्छे जानकार ही नहीं थे बल्कि शिक्षक थे। उन्होंने राजा विलास राय के बच्चों को भी फ़ारसी पढ़ाई। प्रो. शहबाज़ तो बताते हैं ग़ालिब की भी आरंभिक शिक्षा मियाँ नज़ीर के निर्देशन में हुई थी। फ़ारसी के अतिरिक्त नज़ीर ब्रज, अवधी और कुछ-कुछ अरबी से भी परिचित थे। नज़ीर का यह बहुभाषिक संस्कार संभवतः भक्तिकालीन प्रेरणा रही होगी। भक्तिकाल में भी कवियों ने कितनी-कितनी बोलियों में रचना की हैं तुलसी ने अवधि और ब्रज दोनों में रचना की, मीरा को लेकर गुजराती और राजस्थानी के मतभेद से हम सब परिचित ही है।

नज़ीर को लेकर भी उर्दू और हिंदी वालों के बीच मतभेद रहा है किन्तु यह मतभेद विद्यापति और मीरा की तरह अपनाने के लिए नहीं रहा बल्कि बहिष्कृत करने के लिए रहा। हिंदी वालों ने कहा नज़ीर उर्दू के कवि हैं चूंकि इनकी लिपि नस्तालीक़ थी। वहीं उर्दू वालों ने इन्हें हिंदी का कवि माना चूंकि इनकी कविता में फ़ारसी का बहिष्कार था तथा विषयवस्तु प्रायः साझी संस्कृति जनित थी। वास्तव में हिंदी-उर्दू का यह भेद मूलतः राजनीति प्रेरित था और नज़ीर इसी हिंदी-उर्दू की राजनीति का शिकार हुए केवल यही नहीं इस राजनीति ने हमारे इतिहास को भी प्रभावित किया और बहुत से भ्रामक तथ्य हमारे रखे गये। उदाहरण के लिए खड़ी-बोली की कविता के इतिहास पर बात करते हुए हम प्रायः खुसरो के पास जाते हैं खुसरो के बाद कबीर का नाम लेते हैं और सीधे द्विवेदी युग पहुँच जाते हैं। द्विवेदी युग से पहले नज़ीर के यहाँ खड़ी-बोली हिंदी कविता का व्यवस्थित रूप नज़र आता है और यह कोई अचानक नहीं था। यदि हम उर्दू साहित्य का इतिहास का सहारा ले तो हम देखेंगे कि नज़ीर के पहले भी खड़ी-बोली की एक मुकम्मल परंपरा मौजूद है। जिसे हमने उर्दू साहित्य कहकर छोड़ दिया है चूंकि उसकी लिपि नस्तालीक़ है जिसे आम ज़बान में हम फ़ारसी कहते हैं। नज़ीर के पास यह परंपरा संभवतः वहीं से आई होगी। उदाहरण के लिए इन पंक्तियों को देखा जा सकता है –

‘जिसे इश्क़ का तीर कारी लगे

उसे जिंदगी क्यूँ न भारी लगे’[134]

(वली दक्कनी)

‘पिया बाज प्याला पिया जाए ना

पिया बाज एक तिल जिया जाए ना।।’[135]

(कुली क़ुतुब शाह)

‘जैनब आहे उसका नाम।

माथा जानूँ सूरज बाट।।

अमृत घोले सोना बाय।

सरगाँ जैसे लम्बे बाल।।

नयन सलोने ज्यों बादाम।

याके जानों चाँद ललाट।।’[136]

(शाह अशरफ़ बियाबानी, 1503-04)

‘बाला था जब सबको भाया,

बड़ा हुआ कुछ काम न आया।

---

134 हुसैन, एहतेशाम, उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या- 35

135 वही, पृष्ठ संख्या- 28

136 वही, पृष्ठ संख्या- 22

खुसरो कह दिया उसका नाव,

अर्थ करो नहीं छोड़ो गाँव।।'[137]

(अमीर खुसरो)

'सरासर भूल करते हैं, उन्हें जो प्यार करते हैं।

बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं।।'[138]

(जयशंकर प्रसाद)

'ज्यों निकल कर बादलों की गोद से।

थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी।।

सोचने फिर फिर यही जी में लगी।

आह क्यों घर छोड़कर मैं यों बढ़ी।।'[139]

(अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध')

इनमें वली दक्कनी, कुली कुतुब शाह और शाह अशरफ़ बियाबानी को हम उर्दू के शाइर के रूप में जानते हैं और खुसरो को तो दोनों तरफ के लोग अपनाते हैं, जयशंकर प्रसाद और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' को हिंदी के कवि के रूप में किन्तु इनकी भाषा में कोई विशेष अंतर नहीं जान पड़ता। कुछ शब्द अरबी फ़ारसी के जरूर हैं किन्तु वे प्रायः हिंदी ने अपना लिए हैं। वस्तुतः ये उर्दू की

---

137 हुसैन, एहतेशाम, उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या- 13

138 https://www.rekhta.org/hindi-ghazals/saraasar-bhuul-karte-hain-unhen-jo-pyaar-karte-hain-jaishankar-prasad-hindi-ghazals?lang=hi

139 http://www.anubhuti-hindi.org/gauravgram/hariaudh/ekboond.htm

आरंभिक कविता का स्वरूप है। इस समय तक उर्दू कही जाने वाली रचनाओं में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग बहुत कम होता था। बाद में सांप्रदायिक लोगों ने उर्दू को हिंदी से अलग दिखाने के लिए उर्दू में अरबी-फ़ारसी के शब्दों के प्रयोग को प्राथमिकता देने लगे उसी तरह हिंदी को भी उर्दू से अलग दिखाने के लिए कुछ लोगों ने तत्सम और संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोग प्राथमिकता देने की बात कही। वली दक्कनी की ही बाद की रचनाएँ देखी जाएँ उनमें फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है। उदाहरण के लिए –

'हुस्न का मसनद-नशीं वो दिल्बरे मुमताज़ हैं।

दिल्बरों का हुस्न जिस मसनद का पाअन्दाज़ है।।'[140]

प्रो. एहतेशाम हुसैन ने बाताया है कि वली जब दिल्ली आये थे तो शाह गुलशन नामक दरबारी कवि ने उन्हें फ़ारसी के विषय तथा विचारों को रचना में प्रयोग करने की सलाह दी थी[141]। संभव है वली के फ़ारसी बहुल शब्दों के प्रयोग का यही कारण रहा हो।

नज़ीर ने काव्य रचना के लिए खड़ी-बोली को चुना। नज़ीर ने फ़ारसी में भी कविता लिखी और ब्रज में भी किन्तु उनका मन रमा खड़ी-बोली में ही। ब्रज की दो-एक रचना ही उनके यहाँ मिलती हैं। हालाँकि संभव है नज़ीर ने ब्रज में और भी रचनाएँ लिखीं हों क्योंकि नज़ीर की बहुत सी रचनाएँ अब भी उपलब्ध नहीं हो पायी हैं। वास्तव में नज़ीर जब रचना कर रहे थे उस दौर में हिंदी कवियों के बीच जो भाषा प्रचलित थी वह ब्रज ही थी। प्रो. शहबाज़ ने 'ज़िन्दगानी-ए-बेनज़ीर' में बताया है- नज़ीर ने लगभग दो लाख से ऊपर दोहे लिखें हैं जिनमें से केवल छः हज़ार ही उपलब्ध हो पाए हैं। नज़ीर फ़ारसी में पद्य के साथ-साथ गद्य भी लिखा है किन्तु वह उपलब्ध नहीं हो पाया है। नज़ीर के यहाँ जो फ़ारसी की रचनाएँ मिलती हैं वे मूलतः इस्लामी दर्शन से प्रभावित हैं –

---

[140] हुसैन, एहतेशाम, उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या-35

[141] वही, पृष्ठ संख्या- 34

‘यारब है तेरी जात को दोनों जहां में बरतरी।
है याद तेरे फज्ल को रस्में खलाइक परवरी।
दाइम है खासो आम पर लुत्फ़ो अता हिफ़्ज़ आवरी।
क्या उनसिया, क्या तायेरा, क्या वह्‌श, क्या जिन्नों परी।
पाले है सबको, हर जमा तेरा करम और यावरी।’[142]

सात पद लम्बी इस नज़्म में नज़ीर ने ईश्वर की ही तारीफ़ की है। इस नज़्म में वे ईश्वर को हमारी सोच और कल्पना से परे बताते हैं। फ़ारसी की एक नज़्म प्रस्तुत है –

‘तुम शहे दुनियाओ दीं हो या मुहम्मद मुस्तफ़ा।
सर गिरोहे मुसलमीं हो या मुहम्मद मुस्तफ़ा।
हाकिमे दीने मतीं हो या मुहम्मद मुस्तफ़ा।
क़िब्लऐ अहले यक़ीं हो या मुहम्मद मुस्तफ़ा।
रहमतुल लिल आलमी हो या मुहम्मद मुस्तफ़ा॥’[143]

इस नज़्म में नज़ीर ने हज़रत मुहम्मद साहब का यशोगान किया है। इस नज़्म का लगभग वाक्य विन्यास फ़ारसी का ही है। एक और नज़्म देखिये –

‘दिन रात मची आन के ख़ैबर की लड़ाई।
और फ़तह कई रोज़ तलक हाथ न आई।
ले नादेअली हक़ ने पयम्बर को भिजाई।
जिब्रील ने यह बात वहीं आन सुनाई।
यह गढ़ तो किसी तरह न जावेगा उखाड़ा॥

---

[142] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-03
[143] वही, पृष्ठ संख्या- 22

और यूं ही बहुत रोज़ तलक तुम से लड़ेगा।

लश्कर पे लड़ाई का बड़ा बोझ पड़ेगा।

पामाल न हो, ख़ाक में हरगिज न गड़ेगा।

जब तक न अली आन के इस गढ़ पे चढ़ेगा।

यह गढ़ तो उसी शाह से जावेगा उखाड़ा॥'[144]

उपर्युक्त नज़्म में नज़ीर 'खैबर की लड़ाई', जो इस्लामी दर्शन में एक मिथक है, को लयबद्ध किया है। इसकी भाषा में गौर करने वाली बात यह है कि वाक्य-विन्यास लगभग खड़ी-बोली का है किन्तु शब्द प्रायः फ़ारसी भाषा के हैं। अतः स्पष्ट है कि नज़ीर जब इस्लाम के पास जाते हैं तो उनकी रचनाओं में मज़हबी तालीम प्रभावी हो जाती है। जहाँ-जहाँ नज़ीर अल्लाह की स्तुति, पैग़म्बर की तारीफ़ करते हुए तथा इस्लाम से संबंधित मिथकों को कविता में लाने की कोशिश करते हैं वे फ़ारसी के पास चले जाते हैं।

ब्रजभाषा में नज़ीर की रचना कुछ कम मिलती जैसा कि पहले बताया जा चुका है। किन्तु नज़ीर की काव्यभाषा में ब्रज का पुट बहुत जगह मिलेगा। वास्तव में नज़ीर का काव्य-क्षेत्र ब्रज ही था। साथ ही उनके समकालीन साहित्य के एक बड़े भाग की भाषा ब्रज थी। अतः ब्रजभाषा के प्रभाव से बच पाना उनके लिए संभव नहीं था। नज़ीर की कविता में जगह-जगह ब्रज भाषा के शब्द मौजूद हैं। उदाहरण के लिए–

'है रीत जनम की यों होती, जिस घर में बाला होता है।

उस मंडल में हर मन भीतर सुख चैन दोबाला होता है॥

सब बात बिथा की भूले हैं, जब भोला-भाला होता है।

[144] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-50,51

आनन्द मंदीले बाजत हैं, नित भवन उजाला होता है॥
यों नेक नछत्तर लेते हैं, इस दुनियां में संसार जनम।
पर उनके और ही लच्छन हैं जब लेते हैं अवतार जनम॥1॥

सुभ साअ़त से यों दुनियां में अवतार गरभ में आते हैं।
जो नारद मुनि हैं ध्यान भले सब उनका भेद बताते हैं।
वह नेक महूरत से जिस दम इस सृष्टि में जन्मे जाते हैं।
जो लीला रचनी होती है वह रूप यह जा दिखलाते हैं॥
यों देखने में और कहने में, वह रूप तो बाले होते हैं।
पर बाले ही पन में उनके उपकार निराले होते हैं॥2॥'[145]

उपर्युक्त पंक्तियों में वाक्य-विन्यास प्रायः खड़ी-बोली का ही है किन्तु ब्रजभाषा के बहुत से शब्दों का प्रयोग साफ़ देखा जा सकता है। रीत, जनम, बिथा, बाजत, नछत्तर, लच्छन, गरभ आदि शब्द ब्रजभाषा के ही है। 31 पद लम्बी इस नज़्म में नज़ीर ने कृष्ण के जन्म की पूरी कथा कही है। एक और उदाहरण देखा जा सकता है –

'जब खेली होली नंद ललन हँस हँस नंदगाँव बसैयन में।
नर नारी को आनन्द हुए ख़ुशवक्ती छोरी छैयन में॥
कुछ भीड़ हुई उन गलियों में कुछ लोग ठठ्ठ अटैयन में।
ख़ुशहाली झमकी चार तरफ कुछ घर-घर कुछ चौपय्यन में॥
डफ बाजे, राग और रंग हुए, होली खेलन की झमकन में॥
गुलशोर गुलाल और रंग पड़े हुई धूम कदम की छैयन में॥1॥

[145] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-554

हर जगह होरी खेलन की तैयारी सब रंग जतन।
अम्बोह हुए खुशवक्ती के और ऐश खुशी के रूप बरन।
पिचकारी झमकी हाथों में और झमके तन के सब अबरन॥
हर आन हर इक नर नारी से होरी खेलन लागे नंद ललन।
डफ बाजे, राग और रंग हुए, होली खेलन की झमकन में॥
गुलशोर गुलाल और रंग पड़े हुई धूम कदम की छैयन में॥2 ॥'[146]

इस रचना में ब्रजभाषा के शब्दों के साथ-साथ वाक्य-विन्यास में भी ब्रज का प्रभाव मौजूद है। एक बात ध्यान देने की है कि जहाँ-जहाँ कृष्ण मौजूद हैं वहाँ-वहाँ कविता की भाषा में ब्रज का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। प्रस्तुत कविता में भी बसैयन, छैयन, अटैयन, चौपय्यन, होरी खेलन, बरन आदि शब्द भी ब्रजभाषा के हैं। ब्रज के मेलों के वर्णन में भी नज़ीर के यहाँ ब्रजभाषा के शब्दों का बाहुल्य है। उदाहरण के लिए –

'कोई आकर बहाने और मिससे।
मिल रहा है, मिला है दिल जिससे।
होते हैं आ मिलाप जिस तिस से।
लड़ रहा है कोई कहीं रिस से।
कोई खोया गया है मज्लिस से।
कौन चिल्लाए पूछिए किस से।
कोहनी, ब़ाजू में लग रहे घिस्से।
और धक्का पेल, और धमांधिस्से।

[146] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-366

रंग है रूप है, झमेला है।

ज़ोर बल्देव जी का मेला है॥'[147]

हम कह सकते हैं नज़ीर के यहाँ भाषा का स्वरूप विषयानुकूल है। जब वे इस्लाम संबंधी विषयों पर लिखते हैं तब उनकी भाषा में अरबी-फ़ारसी के शब्दों, विशेषकर फ़ारसी के शब्दों, का बाहुल्य हो जाता है। जब वे कृष्ण की बात करते हैं, आगरा-मथुरा के मेलों-ठेलों की बात करते हैं या ब्रज-भूमि की बात करते हैं तब उनकी भाषा में ब्रजभाषा के शब्दों का बाहुल्य हो जाता है। इसके अनेक उदाहरण हम उनकी रचनाओं में देख सकते हैं जिनमें से कुछ यहाँ दिए जा चुके हैं।

यद्यपि नज़ीर की भाषा में कहीं ब्रज तो कहीं फ़ारसी का पुट है, किन्तु नज़ीर की कविता का मूल ढांचा खड़ी-बोली का ही है। वाक्य-विन्यास और सहायक क्रियाएं प्रायः खड़ी-बोली की ही है। इस्लाम से संबंधी कुछ मिथक और ईद आदि पर लिखी नज़्म में कई बार शुरुआत में फारसी शब्दों और वाक्य-विन्यास का बाहुल्य मिलेगा किन्तु वह समाप्त खड़ी-बोली में होगी। इस संदर्भ में मज़लूम पीड़ित शेरनी के इंसाफ वाली कविता देखी जा सकती है, जिसका शीर्षक 'मोजिज़ा हज़रत अली अलैहिस्सलाम' है। इसका आरंभिक पद देखिये 'मुहिब्बाने, दोस्त-दार, मोजिज़ा, शह, आश्कार, अज़-नक्ल, हश्मत, नामदार' आदि फ़ारसी के शब्द हैं किन्तु अंतिम पद में दो-एक शब्दों को छोड़कर शेष हिंदी के ही शब्द हैं। 'लीजो' क्रियापद ब्रज का है। यहाँ से नज़ीर की साझी विरासत वाली पहचान बनती है। यह केवल एक नज़्म है, इसके अतिरिक्त भी कई नज़्में और हैं। 'इश्क अल्लाह', 'तारीफ़ पंजतन पाक़' की आदि ऐसी ही नज़्म है। नज़ीर के यहाँ कहीं कहीं दक्नी की भी झलक मिलती है, उदाहरण के लिए –

---

[147] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या- 389

'हमको तो पर उन्हों से अदब के ख़याल हैं।
अक्सर उन्हों के भेस में साहिब कमाल हैं॥
जो कुछ मुराद मांगो यह बर लावें हीजड़े॥'[148]

इन पंक्तियों में जो 'उन्हों' का प्रयोग है वह दक्कनी का प्रभाव है।

वास्तव में नज़ीर खड़ी-बोली के ज्यादा करीब थे चूंकि वह आम-ज़बान थी। उनकी प्रायः रचनाएँ परिनिष्ठित खड़ी-बोली की ही हैं –

'जब आदमी के हाल पे आती है मुफ़्लिसी।
किस तरह से उसको सताती है मुफ़्लिसी॥
प्यासा तमाम रोज़ बिठाती है मुफ़्लिसी।
भूका तमाम रात सुलाती है मुफ़्लिसी॥
यह दुख वह जाने जिस पे कि आती है मुफ़्लिसी॥'[149]

xxxx

'क्या बक़्त था वह हम थे जब दूध के चटोरे।
हर आन आंचलों के मामूर थे कटोरे।
पांवों में काले टीके, हाथों में नीले डोरे।
या चांद सी हो सूरत, या सांवरे व गोरे॥
क्या सैर देखते हैं यह तिफ़्ल शीर ख़ोरे॥'[150]

148 मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या- 508
149 वही, पृष्ठ संख्या- 259
150 वही, पृष्ठ संख्या- 280

xxxx

'जब आई होली रंग भरी, सो नाज़ो अदा से मटक-मटक।
और घूंघट के पट खोल दिये, वह रूप दिखाया चमक-चमक।
कुछ मुखड़ा करता दमक-दमक कुछ अबरन करता झलक-झलक।
जब पांव रखा ख़ुशवक़्ती से तब पायल बाजी झनक-झनक।
कुछ उछलें, सैनें नाज़ भरें, कुछ कूदें आहें थिरक-थिरक॥
यह रूप दिखाकर होली के, जब नैन रसीले टुक मटके।
मंगवाये थाल गुलालों के, भर डाले रंगों से मटके।
फिर स्वांग बहुत तैयार हुए, और ठाठ ख़ुशी के झुरमुटके।
गुल शोर हुए ख़ुश हाली के, और नाचने गाने के खटके।
मरदंगें बाजी, ताल बजे, कुछ खनक - खनक कुछ धनक - धनक ॥'[151]

इन पंक्तियों में नज़ीर की भाषा का स्वरूप स्पष्ट देखा जा सकता है। सताती, बिठाती, सुलाती, मटक, चमक, थिरक, खटक, कटोरे, चटोरे आदि खड़ी बोली के ही क्रिया पद हैं। नज़ीर की यह भाषा लगभग हमारे समय की परिष्कृत हिंदी ही है। नज़ीर की यह रचनाएँ किसी साधारण से साधारण हिंदी जानने वाले व्यक्ति के भी समझ में आ जाएँगी। नज़ीर ने बहुत साधारण जीवन से शब्दों को उठाया है। उपर्युक्त पद में 'झुरमुटके' शब्द आया है, झुरमुट का अर्थ है झाड़ों के समूह। एक मुहावरा भी प्रचलित है 'झुरमुट मारना' जिसे समूह में मारने के अर्थ में उपयोग में लाया जाता है। एक और शब्द आया है 'मरदंगे' यह 'मृदंग' का ही तद्भव रूप है जो ग्राम्यता के प्रभाव में 'मरदंग'

[151] मुहम्मद, डॉ. नज़ीर(सं), नज़ीर ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृष्ठ संख्या-355

या 'मिरदंग' हो गया है। 'बक्त' वक्त का ग्राम्य रूप है। उपर्युक्त कविता के बरअक्स इन रचनाओं की भाषा को देखा जा सकता है –

'बार-बार आती है मुझको मधुर याद बचपन तेरी।
गया ले गया तू जीवन की सबसे मस्त खुशी मेरी॥
चिंता-रहित खेलना-खाना वह फिरना निर्भय स्वच्छंद।
कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनंद?
ऊँच-नीच का ज्ञान नहीं था छुआछूत किसने जानी?
बनी हुई थी वहाँ झोंपड़ी और चीथड़ों में रानी॥
किये दूध के कुल्ले मैंने चूस अँगूठा सुधा पिया।
किलकारी किल्लोल मचाकर सूना घर आबाद किया॥
रोना और मचल जाना भी क्या आनंद दिखाते थे।
बड़े - बड़े मोती - से आँसू जयमाला पहनाते थे॥'[152]

(मेरा नया बचपन, सुभद्रा कुमारी चौहान)

XX XX

'साजन! होली आई है!
सुख से हँसना
जी भर गाना
मस्ती से मन को बहलाना
पर्व हो गया आज-

[152] https://kaavyaalaya.org/meraa_nayaa_bachpan

साजन! होली आई है!

हँसाने हमको आई है!’[153]

(साजन! होली आई है!, फणीश्वरनाथ रेणु)

यद्यपि नज़ीर की रचनाओं में फ़ारसी और ब्रज की शब्दावली निरंतर मौजूद है, फिर भी फ़ारसी और ब्रजभाषा के बरअक्स नज़ीर की खड़ी-बोली, या जिसे आज हम हिंदी कहते हैं, की रचनाएँ परिमाण में भी अधिक हैं। वस्तुतः नज़ीर जब रचना कर रहे थे तब हिंदी और उर्दू में कोई भेद नहीं था। उस समय इसी भाषा के लिए हिंदी, हिंदवी, और हिन्दुस्तानी नाम प्रचलित थे। उर्दू साहित्य का इतिहास पढ़ते हुए बहुत से ऐसे कवि मिल जायेंगे जिन्हें आज हम उर्दू का कहते हैं किन्तु वे स्वयं अपनी भाषा के लिए हिंदी/हिंदवी आदि संज्ञा का प्रयोग करते हैं। बहाउद्दीन ‘बाजन’ (15 वीं शताब्दी), नुसरती (15 वीं शताब्दी) आदि ऐसे ही नाम हैं।

18वीं शताब्दी के अंत से और 19वीं शताब्दी के आरंभ से जब हिंदी-उर्दू का विवाद गहराया तो कई भाषाविदों का ध्यान नज़ीर की ओर गया। पद्मसिंह शर्मा ने लिखा ‘आम बोल चाल की भाषा कैसी होनी चाहिए, उसका नमूना ज़फर, नज़ीर और हाली की कविताओं में मिलता है। ये तीनों महाकवि अरबी फ़ारसी के विद्वान थे, कठिन और दुर्बोध भाषा में कविता करना उनके लिए कुछ भी कठिन न था, फिर भी उन्होंने कैसी सरल, सरस और सुघड़ भाषा में कविताएँ लिखीं हैं।...नज़ीर की कविता– भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से खालिस हिन्दुस्तानी कही जा सकती है’[154]

इस अध्याय के पीछे जो मेरा उद्देश्य है कि वास्तव में नज़ीर की कविता में शेड्स बहुत ज्यादा है। इतने तरह की कविताएँ हैं। काव्यभाषा के रूप इतने अधिक हैं, अंतर्वस्तु की विविधता

[153] http://kavitakosh.org/kk/साजन! होली आई है! / फणीश्वरनाथ रेणु

[154] शर्मा, पद्मसिंह, हिंदी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहबाद, 1951, पृष्ठ 111

इतनी अधिक है, व्यापकता इतनी ज्यादा है कि जो एक तरह से सोचने वाली आलोचना दृष्टि है वह नज़ीर को नहीं समझ पाती है। फ़िराक गोरखपुरी जब ये बात कह रहे हैं कि नज़ीर अपने समय से पहले पैदा हो गये' तो वे इसी बात की ओर इशारा कर रहे हैं। उर्दू या हिंदी साहित्य के इतिहास और आलोचना में नज़ीर की उपेक्षा का यही कारण है कि रीतिकालीन और उसकी समानांतर कविताओं को पढ़ते हुए हम एक ही दृष्टि से सोचने की कोशिश करते हैं। जो रास्ता हमें शुक्ल जी के इतिहास ने दिखाया हम उससे आगे बढ़ ही नहीं पाते हैं।

# उपसंहार

# उपसंहार

नज़ीर अकबराबादी को जब मैंने पढ़ना शुरू किया और जब इस विषय पर लघु शोध-प्रबंध का निर्णय हुआ तब मेरे मन में कई सवाल थे। पहला सवाल तो यह कि इतना महत्वपूर्ण कवि आखिर किस कारण से अब तक मेरे लिए अपरिचित था। यह अपरिचय यदि सिर्फ मेरा व्यक्तिगत होता तो कोई चिंता की बात नहीं थी। मैंने पाया कि नज़ीर अकबराबादी आमतौर पर हिंदी के विद्यार्थियों के मानसिक आयतन से बाहर हैं और यही चिंता मेरे इस काम के लिए प्रेरणा-स्त्रोत बनी, जिसकी चर्चा मैंने प्रस्तावना में भी की है।

नज़ीर का दूसरा पहलू, जिसने मुझे आकर्षित किया वह थी उनकी 'भाषा'। यद्यपि नज़ीर स्वयं मध्यकालीन कवि थे फिर भी उनकी कविताओं को पढ़ते हुए मुझे उस तरह की कोई दिक्कत नहीं हुई जैसी आमतौर पर मध्यकालीन कविता पढ़ते हुए होती है। नज़ीर की भाषा बिलकुल वैसी ही है, जिस भाषा का उपयोग आज हम लोग बोलचाल के रूप में करते हैं।

तीसरा पक्ष जिस पर मेरा ध्यान गया वह था नज़ीर की कविताओं में 'विषय का चुनाव' और उसका 'वैविध्य'। इन्हीं प्रमुख बिन्दुओं पर विचार करते हुए मैंने इस शोध की योजना बनायी।

इस शोध के दौरान हिंदी और उर्दू आलोचना तथा साहित्येतिहास पर विचार करते हुए जो मैंने अनुभूत किया कि हिंदी आलोचना और इतिहास में नज़ीर की उपेक्षा के कई कारण रहे हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कारण तो हिंदी-उर्दू का विवाद रहा। इस हिंदी-उर्दू के विवाद में नज़ीर न हिंदी में ही रह पाए और ना उर्दू में। हिंदी साहित्य के इतिहास में जहाँ से हिंदी-उर्दू का साहित्य बँटता है वहाँ से नज़ीर पर चर्चा का 'स्पेस' घटता जाता है और आचार्य शुक्ल के बाद लगभग नहीं रहता। बच्चन सिंह के यहाँ वह स्पेस आता भी है तो एक विशेष प्रावधान के तहत जो अपने आप में विवादित है। वस्तुतः यह इस बात की ओर इशारा करता है कि 'हिंदी साहित्य का इतिहास' अब

भी हिंदी-उर्दू विवाद की छाया से मुक्त नहीं हो पाया है। जिसकी चर्चा मैंने पहले अध्याय में की है। नज़ीर केवल एक उदाहरण है इतिहास में अब भी बहुत से ऐसे साहित्यकार हैं जो इस विवाद का शिकार हुए हैं।

दूसरा कारण जो मेरी समझ में आया वह ये कि हिंदी आलोचना और इतिहास आज भी रीतिकाल पर विचार करते हुए  प्रायः उस दृष्टि-विशेष से मुक्त नहीं हो पाया हैं, जिसके अनुसार हम रीतिकाल को 'बंधी नाली' और 'श्रृंगारकाल' की संज्ञा देते हैं। वस्तुतः रीतिकाल पर हिंदी आलोचना अब तक पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं हो पायी है। वास्तव में रीतिकाल का मूल्यांकन दरबारी काव्य से इतर नहीं हो पाया है। रीतिकाल में श्रृंगारिकता है इसमें कोई दो राय नहीं लेकिन श्रृंगारिकता के अतिरिक्त भी रीतिकाल में बहुत कुछ मौजूद है। ठीक उसी तरह जैसे वीरगाथाकाल में वीरकाव्य के अतिरिक्त श्रृंगार-काव्य और भक्ति-काव्य भी मौजूद है। यदि किसी काल विशेष को पढ़ते हुए हमारी दृष्टि किसी प्रवृत्ति-विशेष के अधीन न हो और पूर्वाग्रह से मुक्त हो तो हमारे समक्ष अन्य भाव-भूमि की कविताएँ भी होंगी। जैसे नज़ीर की कविता है। समस्या यहीं है, काल विशेष पर बात करते हुए हमारी दृष्टि सीमित हो जाती है, हम एक ही तरीके से सोचते हैं और उसी तरह की कविताएँ उद्धृत करते हैं, जो दृष्टि पहले के आलोचकों ने दी है। वास्तव में किसी प्रवृत्ति या वैचारिकता के अधीन रहकर किसी भी युग के साहित्य का समग्र मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। साहित्य में आलोचना की ये सबसे बड़ी समस्या रही है कि उसकी दृष्टि 'समग्र' नहीं हो पाई है। इसका खामियाज़ा ऐसे रचनाकारों को भुगतना पड़ता है जो उस वैचारिकी और प्रवृत्ति में शामिल नहीं होते हैं। नज़ीर को शोध का आधार बनाना इस वजह से मैंने जरूरी समझा क्योंकि नज़ीर समय के सरोकारों को जीने वाले रचनाकार के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं। मैंने उनकी रचनाओं के पाठ को आधार बनाकर हिंदी साहित्य में उनके योगदान को पहचानने की कोशिश की। वास्तव में नज़ीर अपनी कविताओं के विषय के रूप में आधुनिक युग के पथ प्रदर्शक कवि हैं

जहाँ साहित्य का संबंध महलों और दरबारों की बजाए आम जनता से जुड़ता है। नज़ीर की कविता अपने समय और समाज से जुड़ती है। उनकी रचनाओं में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियाँ दर्ज़ हैं। उनकी रचनाओं में जीवन का यथार्थ चित्रित है। अपने समय से रीतिकालीन होने के बावजूद नज़ीर की रचनाओं का विषय चयन अपने समय से बहुत आगे का है। यद्यपि उनकी कविताओं में रीतिकालीन प्रवृत्तियों की भी झलक मिलती है किन्तु अपने समय की कविता को राजाश्रय से मुक्त कराने वाले शीर्ष कवि के रूप में नज़ीर को देखा जा सकता है। दरबारी कविता की एक लम्बी परम्परा तोड़ते हुए नज़ीर सीधे जनता से जुड़ते हैं। नज़ीर की भाषा आगरे के बाज़ार की वह भाषा है जो उत्तर-प्रदेश के लगभग सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती है ऐसा इसलिए भी है क्योंकि आगरा उस दौर में व्यापारियों का एक बड़ा केंद्र था। कई प्रान्तों से यहाँ लोगों का जुटान स्वाभाविक था। इसलिए नज़ीर के यहाँ भाषा के स्तर पर इतनी विविधता देखी जा सकती है। इसके साथ ही बाज़ार में हर तबके के लोग खरीददार भी होते हैं इसका भी प्रभाव नज़ीर की कविता में देखा जा सकता है उनकी कविता प्रत्येक वर्ग से जुड़ती है। वास्तव में ये नज़ीर की विशेषता है जिसे उनके समकालीनों ने उनकी कमज़ोरी समझा। उर्दू तनक़ीद (आलोचना) और अदबी-तारीखों (साहित्येतिहास) में नज़ीर की उपेक्षा का प्रमुख कारण जो मेरी समझ में आया वह यही था, जो मूलतः शिष्ट और अशिष्ट साहित्य की बहस को जन्म देता है। उर्दू आलोचकों का मानना है कि नज़ीर की भाषा बाज़ारू थी उनकी कविता आम जनता की ज़ुबान पर थी। ऐसा वे इसलिए कह रहे थे कि उस समय जो साहित्य की भाषा मानी जाती थी वह दरबार की परिष्कृत और फारसीनिष्ठ उर्दू थी। बहरहाल आज भी यदि आप आगरा जाएँ तो बहुत से व्यवसायी आपको ऐसे मिलेंगे जिनकी ज़बान पर नज़ीर की कविता है।

नज़ीर को पढ़ते हुए मुझे महसूस हुआ कि नज़ीर जहाँ रहते थे मुझे वहाँ जाना चाहिए। यह यात्रा मेरे लिए आरंभ में थोड़ी दुखद रही वह इसलिए कि नज़ीर को खोजते हुए जब मैं आगरा

पहुंचा तो सबसे पहले मैं नज़ीर की मज़ार पर गया। मियाँ नज़ीर मार्ग, मोहल्ला ताजगंज। उस मज़ार की स्थिति देखकर मुझे लगा नज़ीर आगरे में अब शायद ही कही मिलेंगे। मज़ार की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। उस मज़ार के चबूतरे पर बकरियां बंधी हुई थी और चारो तरफ गंदगी और गोबर- मुझे देखकर दुःख हुआ। लेकिन जैसे-जैसे मैं नज़ीर को ढूंढने आगरा के गली-कूंचो में निकलता गया मुझे नज़ीर का पता मिलता गया। राह चलते मेरी मुलाक़ात कुछ नज़ीर प्रेमियों से हुई जिनमें एक पीर भी थे, एक गुपचुप वाला, फेरीवाला, किराने वाला, और कुछ और लोग। मेरे लिए एक सुखद अनुभव था कि नज़ीर कम से कम उन लोगों के बीच तो जिंदा है जिनके लिए वह अपने समय में लिख रहे थे। नज़ीर ग्रंथावली पढ़ते हुए मैंने जाना था कि आगरा में एक भैरव मंदिर है जहाँ आज भी नज़ीर की नज़्म आरती के रूप में गायी जाती है अतः मैंने उस मंदिर की पूछताछ शुरू की। तीसरे दिन मुझे वह मंदिर मिला आरती का समय तो बीत चुका था लेकिन जो लोग वहां मौजूद थे मैंने उनसे बातचीत की। मुझे यह जानकार अच्छा लगा कि इतने सांप्रदायिक समय में भी नज़ीर का संगीत उस भैरव मंदिर में मौजूद था। तीसरे अध्याय में मैंने नज़ीर की इस नज़्म का ज़िक्र किया है। लोगों से बात करते हुए पता चला कि हर साल बसंत-पंचमी को नज़ीर की मज़ार पर नज़ीर मेला लगता है जो क़रीब 70-80 सालों से तो निरंतर लग रहा है। इसका दारोमदार इन दिनों 86 साल के एक बुजुर्ग पीरज़ाद उमर तैमूरी पर है। मैं, 1833 ई. में स्थापित आगरा महाविद्यालय गया, जहाँ नज़ीर नदारद थे। मुझे आश्चर्य हुआ कि वहाँ का साहित्य विभाग अपनी भूमि के इतने बड़े कलमकार से परिचित नहीं है। मैंने कुछ वक्त पीरज़ाद उमर तैमूरी के साथ बिताया उनसे नज़ीर के बारे में जाना। उनसे बातचीत के क्रम में एक और नई बात से मेरा परिचय हुआ कि उर्दू साहित्य में नज़ीर की उपेक्षा के पीछे एक कारण शिया-सुन्नी का आपसी विवाद भी है।

यदि इस यात्रा के निष्कर्ष रूप में भी नज़ीर के रचना संसार को आगरा में ही देखें तो वह मुख्य मार्ग पर भले न दिखाई पड़ें लेकिन वहाँ के गली-कूचों, हाट-बाजारों में आज भी उनकी उपस्थिति बखूबी दिखाई पड़ती है। हिंदी या उर्दू साहित्य की अगर बात करें तो ठीक इसी प्रकार साहित्य की मुख्य-धारा में इनकी चर्चा भले कम रही हो लेकिन सामाजिक सरोकारों से जुड़े होने के कारण इनकी कविताएँ आज भी एक खास वर्ग के पास जीवंत है। जो वर्तमान में भी प्रासंगिक बनी हुई हैं। इस शोध के माध्यम से मैंने विवादों और काल विशेष से इतर इनके पाठ को आधार बनाकर एक रचनाकार के तौर पर नज़ीर अकबराबादी को देखने और समझने का प्रयास किया। और पाया कि नज़ीर अपनी रचनात्मक जिम्मेदारियों के साथ सशक्त रचना संसार-निर्मित करने में सफल रहे हैं। साहित्य और समाज के रिश्ते की बारीक़ बुनावट इनकी कविताओं में है। बहरहाल हिंदी आलोचना और हिंदी साहित्य के इतिहास में जो नज़ीर की उपेक्षा है उसे तो मैं दूर नहीं कर सकता लेकिन मेरा ये विनम्र विश्वास है कि मेरे इस शोध से संभव है हिंदी आलोचना और इतिहास के क्षेत्र में काम करने वाले लोग नज़ीर पर ध्यान देंगे।

# संदर्भ सूची

# संदर्भ सूची

**आधार ग्रंथ :**


1. गुप्ता, रूपा व देवी, अनीता (सं.), नज़ीर अकबराबादी रचनावली, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
2. गोरखपुरी, फिराक़ (सं.), नज़ीर की बानी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
3. मुहम्मद, प्रो. नज़ीर (सं.), नज़ीर ग्रंथावली, हिंदी संस्थान, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1992


**संदर्भ ग्रंथ :**


1. अलीम, डॉ. अब्दुल, नज़ीर अकबराबादी और उनकी विचारधारा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992
2. अवस्थी, डॉ. मोहन, हिंदी-रीतिकविता और समकालीन उर्दू-काव्य, सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, 1978
3. ग्रियर्सन, सर जॉर्ज ए., द मॉडर्न वेर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ इंडिया, कलकात्ता, 1889
4. गोरखपुरी, रघुपति सहाय 'फिराक़', उर्दू भाषा और साहित्य का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 2008
5. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992
6. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
7. मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, वि.सं. 1994
8. याजदानी, डॉ. कौसर, सूफी दर्शन एवं सूफी साधना, जेन्युइन पब्लिकेशन्स एंड मीडिया प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1987
9. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, हिन्दुई साहित्य का इतिहास(अनु.), हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहबाद, 1953
10. शर्मा, जानकी प्रसाद, उर्दू साहित्य की परंपरा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001

11. शर्मा, पद्मसिंह, हिंदी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहबाद, 1951
12. शर्मा, पद्मसिंह, हिंदी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहबाद, 1951
13. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, चिंतामणि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015
14. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2014
15. सिंह, ओमप्रकाश, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2007
16. सिंह, डॉ. प्रभाकर, रीतिकाव्य: मूल्यांकन के नये आयाम, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016
17. सिंह, डॉ. बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
18. हसन, मुहम्मद, नज़ीर अकबराबादी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1987
19. हुसैन, एहतेशाम, उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011
20. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
21. Bailey, T. Grahame, A History of Urdu Literature, Oxford University Press, London, 1932
22. Haque, Ishrat, Glimpses Of Mughal Society and Culture, Concept Publishing Company, New Delhi, 1992
23. Sadiq, Muhammad, A History of Urdu Literature, Oxford University Press, Delhi, 1995
24. Saksena, Ram Babu, A History of Urdu Literature, Cosmo Publications, India, 2002
25. Zaidi, Ali Jawad, A History of Urdu Literature, Sahitya Akademi, New Delhi, 2006

**शब्दकोश :**

1. दीक्षित, कृष्ण कान्त, व उपाध्याय, सूर्यनारायण (सं), बृहत् शिक्षार्थी हिंदी-हिंदी शब्दकोश, श्री प्रकाशन, नई दिल्ली, नवीन संस्करण
2. https://www.rekhta.org/urdudictionary

**वेब संदर्भ :**


1. http://www.anubhuti-hindi.org
2. http://www.hindisamay.com
3. http://kavitakosh.org/kk
4. https://plus.google.com/
5. https://www.rekhta.org
6. http://streekaal.com

# प्रकाशित शोध-आलेख

# एवं

# प्रमाण-पत्र

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी مولانا آزاد نیشنل اُردو یونیورسٹی

# Maulana Azad National Urdu University

(A Central University established by an Act of Parliament in 1998)
Gachibowli , Hyderabad (T.S.) 500 032, Ph: 040 – 23006612,13,14, 15
(Accredited 'A' Grade by NAAC)

## Certificate

*This is to certify that smt/sri/Dr.* KUMUD RANJAN MISHRA *has participated in the Two Day International Seminar on Hindi aur Urdu ki Saajhi Virasat held on 30-31 March, 2017 and chaired session/presented a paper entitled* "GANGA-JAMUNI TEHZEEB KE KAVI NAZEER"

| | | |
|---|---|---|
| **Dr.Karan Singh Utwal** | **Dr.Shamshul Hoda** | **Dr.Mohd.Khalid Mubashir-uz-Zafar** |
| Convenor | Co-convenor | Director |

**Date : 31st March 2017**

# अन्तरराष्ट्रीय शोध संगोष्ठी

'मध्यकालीन हिन्दी कविता का अन्य ललित कलाओं से अन्तःसम्बन्ध'

## हिन्दी विभाग, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.), भारत

(नैक द्वारा 'ए' ग्रेड प्रत्यायित)

दिनांक 06, 07 एवं 08 मार्च 2019

## प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ......कुमुद रंजन मिश्र...... ने हिंदी विभाग द्वारा आयोजित त्रिदिवसीय अन्तरराष्ट्रीय शोध संगोष्ठी में अध्यक्ष/मुख्य/ विशिष्ट अतिथि के रूप में वक्तव्य दिया/ आलेख पठन किया/चर्चा/ चित्रप्रदर्शनी/ सांस्कृतिक प्रस्तुति में प्रतिभागिता की।

शोधपत्र का शीर्षक ......कविता और संगीत का अंतःसंबंध : नजीर की कविता का विशेष परिप्रेक्ष्य

| | | |
|---|---|---|
| प्रो. मृदुला शुक्ल | पी.एस. ध्रुव | प्रो. माण्डवी सिंह |
| संयोजक | कुलसचिव | कुलपति |

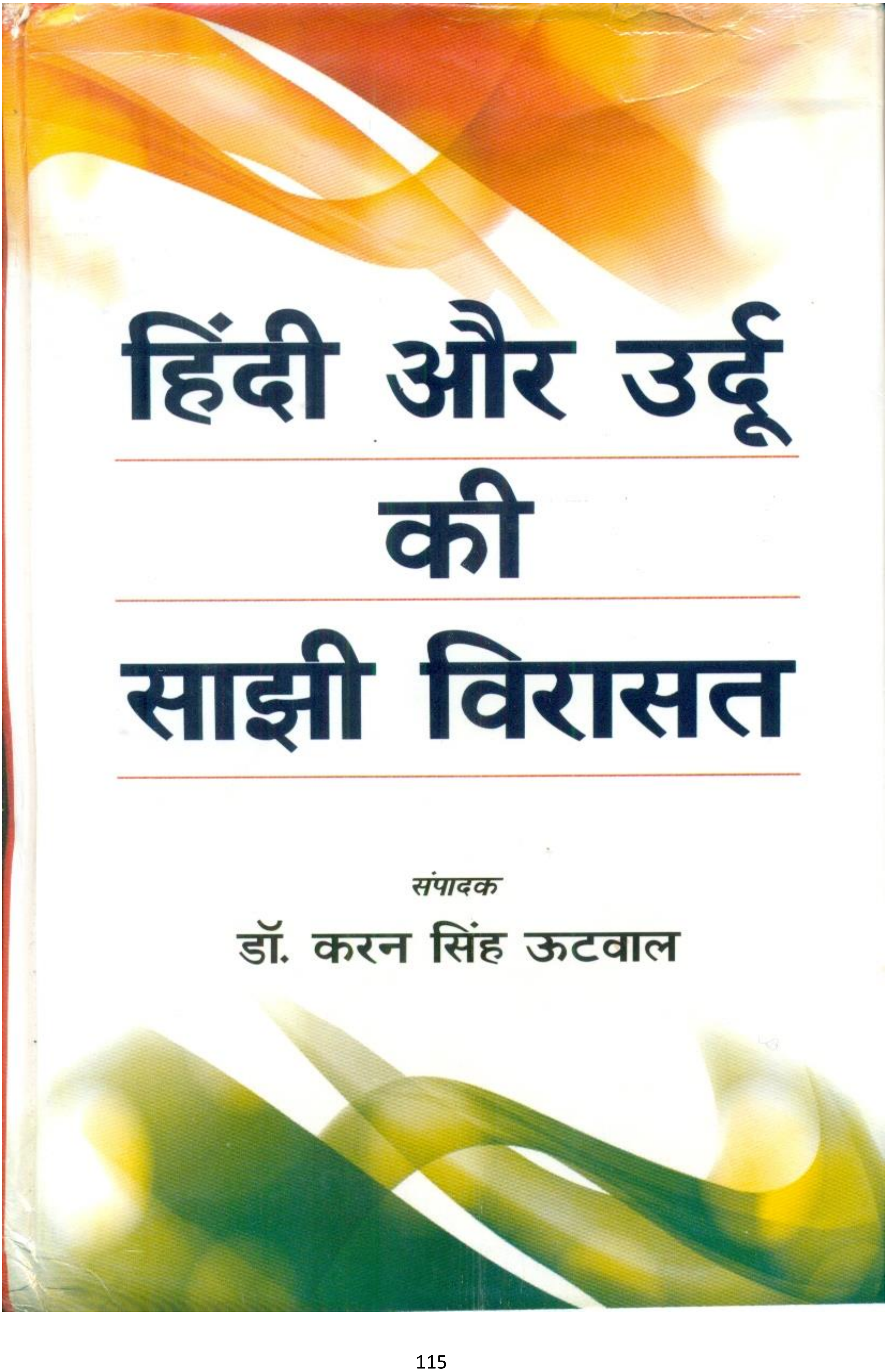
हिंदी और उर्दू
की
साझी विरासत
संपादक
डॉ. करन सिंह ऊटवाल

नेशनल
पब्लिशिंग
हाउस
4230/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002

# हिंदी और उर्दू की साझी विरासत

संपादक
डॉ. करन सिंह ऊटवाल

**नेशनल पब्लिशिंग हाउस**
4230/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002

यह पुस्तक मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद के आंशिक आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

ISBN 978-81-214-0792-2

**मूल्य : ₹ 1100**

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 4230/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002 द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण : 2018 / © संपादक के पास सुरक्षित / बालाजी प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित

*e-mail* : nationalpublishinghouse@ymail.com

## खंड-3
## उर्दू और हिंदी–दोनों भाषाओं में लिखने वाले लेखक

| | | |
|---|---|---|
| 47. राही मासूम रज़ा : गंगा-जमुनी तहज़ीब के संरक्षक | *अजय* | 183 |
| 48. प्रेमचंद के कथा साहित्य में गंगा-जमुनी तहज़ीब | *डॉ. के ज्योति रानि* | 187 |
| 49. प्रेमचंद की कहानियों में गंगा-जमुनी तहज़ीब | *डॉ. जी.वी. रत्नाकर* | 191 |
| 50. राही मासूम रज़ा के साहित्य में गंगा-जमुनी संस्कृति की प्रतिष्ठा | *डॉ. राहुल उठवाल* | 195 |
| 51. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में धार्मिक-सांस्कृतिक एकता | *एम मधुकर राव* | 201 |
| 52. हिंदू-मुस्लिम एकता के परिप्रेक्ष्य में असगर वजाहत का योगदान | *डॉ. रेविता बलभीम काबळे* | 205 |
| 53. हिंदी-उर्दू के हिमायती प्रेमचंद | *अभिमन्यु सिंह* | 209 |
| 54. प्रेमचंद के लेखन में गंगा-जमुनी तहज़ीब | *अतुल कुमार पांडेय* | 215 |
| 55. प्रेमचंद के साहित्य में सांप्रदायिक एकता | *बोईनवाड कृष्णा बाबुराव* | 218 |
| 56. राही के लेखन में व्यक्त भाषाई चिंतन | *अम्बरीन आफताब* | 224 |
| 57. नासिरा शर्मा के उपन्यासों में गंगा-जमुनी संस्कृति का संगम | *बी. श्रीलता* | 228 |
| 58. प्रेमचंद की 'मंदिर और मस्जिद' तथा 'मुक्तिधन' कहानियों में गंगा-जमुनी तहज़ीब | *चिराग राजा* | 233 |
| 59. नज़ीर : गंगा-जमुनी तहज़ीब के कवि | *कुमुद रंजन मिश्र* | 237 |
| 60. नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में सांस्कृतिक बोध | *टी. माधवी* | 240 |
| 61. गंगा-जमुनी तहज़ीब की विरासत और नज़ीर अकबराबादी | *आज़ाद* | 244 |
| 62. मेरा नाम मुसलमानों जैसा है : राही मासूम रज़ा | *खुशबू* | 250 |
| 63. नज़ीर अकबराबादी के काव्य में चित्रित गंगा-जमुनी तहज़ीब | *ज़ेनब खान* | 254 |

# 59

# नज़ीर : गंगा-जमुनी तहज़ीब के कवि

**–कुमुद रंजन मिश्र**

'गंगा-जमुनी तहज़ीब' के महत्त्वपूर्ण कवि का नाम है–नज़ीर अकबराबादी। नज़ीर जिनका वास्तविक नाम बली मुहम्मद था। इनका जन्म 1735 ई. में दिल्ली में हुआ था। चार वर्ष की उम्र में इन्होंने 'कुरान' का अध्ययन मौलवी साहब की देख-रेख में आरंभ किया। इसके बाद इन्होंने फ़ारसी का अध्ययन स्वाध्याय के बल पर किया। अपने बाल्यकाल में ही इन्होंने दिल्ली को लुटते देखा। नादिरशाह के दिल्ली पर आक्रमण के बाद ये अपनी मां और नानी के साथ आगरा चले गये और उसे ही अपना कार्य-स्थल बनाया।

नज़ीर जिस समय काव्य रचना कर रहे थे, हिंदी कविता में यह रीतिकाल का अंतिम दौर था। इस युग की हिंदी कविता जहां पूरे शानो-शौकत के साथ शाही दरबारों में अपनी सेवा दे रही थी वहीं नज़ीर लोक जीवन की अनुभूतियों में अपनी कविता को खोज रहे थे। इन्होंने राजाश्रय ठुकराने की हिम्मत दिखायी जिसके बारे में जानकी प्रसाद शर्मा लिखते हैं : "...जबकि अधिकांश कवि राजाश्रय के मोह में अपनी कवि चेतना को कुंठित कर चुके थे और दरबार में सुशोभित होने की होड़ लगी हुई थी। ऐसे में नज़ीर ने राजा भरतपुर और सआदत अली खां के निमंत्रण को ठुकराया।"[1]

नज़ीर वास्तव में लोक जीवन के कवि थे। उनका व्यक्तित्व उत्सवधर्मी था, जिसने उन्हें हिंदू-मुस्लिम दोनों समाजों में घुलने-मिलने की प्रेरणा दी। भारतीय समाज उत्सव बहुल समाज है। लोक जीवन के प्रति अत्यधिक अनुराग की भावना ने उन्हें कृष्णलीला की ओर उन्मुख किया। इस अर्थ में उन्होंने सांप्रदायिक सद्‌भावना और समाज को जोड़ने की दिशा में कार्य किया। ईद और शबे-बरात पर जितना लेखन नज़ीर के यहां मिलता है उतना ही होली और दीवाली पर भी। लोक के प्रति नज़ीर के लगाव ने ही उन्हें भारतीय लोक जीवन के ऐतिहासिक चरित्र कृष्ण के निकट लाया और फिर कृष्ण में जो उनका मन रमा की वह स्वयं को ही भूल गये। उनके कृष्ण प्रेम

का प्रमाण हमें उनके काव्य में अथवा नज़्मों में स्पष्टत: दिखायी देता है, जब वे 'श्रीकृष्ण जी की तारीफ़'[2] में लिखते हैं :

*जब तुझसे मिला ख़ुद को भूला।*
*हैरान हूँ मैं इंसा कि ख़ुदा।*
*मैं यह भी हुआ, मैं वह भी हुआ।*
*ऐ सल्ले अला,*
*अल्लाहो गनी, अल्लाहो गनी।*

नज़ीर ने कृष्ण पर कई नज़्में लिखीं जिनमें लगभग ग्यारह-बारह ही प्राप्त होती हैं। इनमें-श्रीकृष्ण जी की तारीफ़ में, जनम कन्हैया जी, बालपन-बांसुरी बजैया का, खेलकूद कन्हैया जी का, कन्हैया जी की रास, ब्याह कन्हैया का, श्रीकृष्ण व नरसी मेहता आदि प्रमुख हैं। इन रचनाओं में नज़ीर कहीं कृष्ण की बाललीला का, कहीं कृष्ण-विवाह का तो कहीं सुदामा-उद्धार का। कृष्ण प्रेम में वे ऐसे डूबे कि अपना तन-मन सब-कुछ कृष्ण पर न्यौछावर कर दिया :

*मोहन, मदन, गोपाल, हरी, बंस, मन हरन।*
*बलिहारी उनके नाम पै मेरा यह तन बदन ।।*[3]

कृष्ण के जन्मोत्सव का वर्णन करते हुए नज़ीर ने अद्भुत पंक्तिया गढ़ी हैं :

*थी कोने कोने खुशवक़्ती और तबले ताल खनकते थे।*
*कोई नाच रही, कोई कूद रही, कोई हँस-हँस के कुछ रूप सजे ।।*
*हर चार तरफ आनन्दें थीं, वां घर में नन्द-जसोदा के।*
*कुछ आँगन बीच बिराजें थीं, कोई बैठी कोठे और छज्जे ।।*
*सौ खूबी और खुशहाली से दिखलाती थी सामान खड़ी।*
*सच बात है बालक होने की, हे दुनिया में आनन्द बड़ी ।।*[4]

वास्तव में नज़ीर ने कृष्ण के चरित्र को बहुत अच्छे से समझा और न केवल कृष्ण को बल्कि कृष्ण और लोक के संबंध को भी वे भलीभांति जानते थे। भारतीय संस्कृति और समाज के चिंतक राममनोहर लोहिया ने भारतीय सांस्कृतिक एकता को बांधने वाले तीन प्रतीक माने हैं 'राम, कृष्ण और शिव'। संभवत: नज़ीर इस बात को बहुत पहले से समझते रहे होंगे इसलिए वे लिखते हैं:

*ले सब्रो कनाअत साथ मियां, सब छोड़ ये बातें लोभ भरी...*
*सब चैन हुए आनन्द हुए बम शंकर बोलो हरी हरी ।।*[5]

डॉ. शमशाद अली उनकी इस दूरदर्शिता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं : "विभिन्न धार्मिक पर्वो पर यह संपूर्ण क्षेत्र विष्णु, महादेव अथवा कृष्णमय हो उठता था। नज़ीर जैसा दूरदर्शी और सभी धर्मों में विश्वास करने वाला कवि इस परिवेशगत यथार्थ बोध को ग्रहण करने से कैसे वंचित रहता।"[6]

हिंदी साहित्य के महत्त्वपूर्ण आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल नजीर के महत्त्व को ठीक से समझ नहीं पाये। यही कारण है कि उन्होंने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में नज़ीर पर चलते-चलते बात की और उन्हें 'एक मनमौजी सूफ़ी भक्त'[7] मात्र कहकर छोड़ दिया और बाद के हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने भी इन्हें कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया। वास्तव में नज़ीर का स्थान उन कवियों में नहीं है जिन पर चलते ढंग से बात की जाये। नज़ीर एक बड़े कवि हैं, कथ्य की दृष्टि से भी और भाषा की दृष्टि से भी। उनके यहां हिंदी-उर्दू का भेद नहीं था, बल्कि सही मायनों में वे हिंदुस्तानी के कवि थे। उनके काव्य में भी हिंदुस्तानी लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति है। जानकी प्रसाद शर्मा लिखते हैं : ''एक शायर के रूप में नज़ीर यह जानते थे कि भारतीय संस्कृति को समग्रता में उभरना है तो हिंदू और मुसलमानों के तीज-त्योहारों को एक साथ देखना होगा। उनके पास समन्वित संस्कृति की एक स्पष्ट धारणा थी जिसके तहत उन्होंने 'शबे-बरात', 'ईद', 'इदुलफित्र', 'ईदगाह अकबराबाद', 'होली', 'सामान दीवाली का' और राखी' जैसी नज़्में लिखीं।"[8]

समग्रता में कहें तो वस्तुत: नज़ीर की यह दृष्टि ही उनके विशाल व्यक्तित्व को दर्शाती है कि नज़ीर वास्तव में कवि थे और कवि अथवा लेखक का कोई धर्म या संप्रदाय नहीं होता। यही कारण है कि नज़ीर ने राजाश्रय नहीं चुना और विभिन्न पर्वों, पशु-पक्षियों, मेलों, खेल-तमाशों आदि पर अपनी लेखनी चलाते हैं। कृष्ण पर तो उनके यहां पर्याप्त लेखनी मिलती है। लोक परंपरा के साथ कृष्ण परंपरा में भी इनका अविस्मरणीय योगदान रहा है। ऐसे में नज़ीर ने साहित्य जगत में साक्षी और समन्वय की संस्कृति को आगे बढ़ाने का काम करते हैं।

## संदर्भ


1. जानकी प्रसाद शर्मा, उर्दू साहित्य की परंपरा, वाणी प्रकाशन, पृ. 47-48
2. श्री कृष्ण जी की तारीफ में http//www.hindi-kavita.com/HindiSh...
3. बालपन बांसुरी बजैया का http//www.hindi-kavita.com/hindishrikrishnanazeerAkbarabhadi Php//Krishna3
4. जन्म कन्हैया जी http//www.hindi-kavita.com/hindiSufiyanakalamNazeerAkbarabadi2.php#Sufi28
5. बम शंकर बोलो हरी हरी htt//www.hindi-kavita.com/hindiShriKrishnaNazeerAkbarbadi Ph//krishna2
6. डॉ. शमशाद अली, नजीर अकबराबादी के काव्य में यथार्थबोध, अनिरुद्ध बुक्स, पृ. 89
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, पृ. 420
8. जानकी प्रसाद शर्मा, उर्दू साहित्य की परंपरा, वाणी प्रकाशन, पृ. 56